सुबोध पंचतंत्र

सुबोध पंचतंत्र

(प्रथम भाग)

(शिक्षा-संचालक उत्तर प्रदेश द्वारा बेसिक स्कूलों के लिए स्वीकृत)



मूल लेखक—श्री विष्णुशर्मा

संपादक—

श्री लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज, एम. ए.

अध्यापकों के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा सम्मानित

तथा

भारत-सरकार के शिक्षा-मंत्रालय द्वारा लेखक रूप में पुरस्कृत



प्रकाशक

(राजा) रामकुमार प्रेस, बुकडिपो

उत्तराधिकारी

नवलकिशोर प्रेस,

लखनऊ

चतुर्थ बार ११,००० प्रतियाँ] १९६१ [मूल्य—१ रु० ५० न० पै०

श्री त्रिभुवननाथ धीर द्वारा
(राजा) रामकुमार-यन्त्रालय, लखनऊ में मुद्रित
सन् १९६१ ई०

अपनी सहधर्मिणी लक्ष्मी देवी को जो मेरे लिए

'लक्ष्मी' तथा 'सरस्वती' दोनों की

साक्षात् मूर्त्ति है

और जिसका

इस पुस्तक के लेखन तथा संपादन में मुझे

पूर्ण बौद्धिक-सहयोग मिला

सप्रेम समर्पित

मेरा निवेदन

'पंचतंत्र' हमारे देश के संस्कृत-साहित्य की एक विख्यात पुस्तक है जिसमें पशु-पक्षियों की कहानियों द्वारा नीति एवं धर्म की शिक्षा दी गई है। यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई कि इस्लामी देशों तथा यूरोप के सभी देशों में इसके अनुवाद भी हुए और बाद में इसी के आधार पर अन्य कहानियाँ लिखी गईं। पशु-पक्षियों पर ढालकर रची हुई कहानियों की यह अमर पुस्तक हमारी वह पुस्तक है जो संसार को भारत की देन है—जिसके लिए संसार हमारा ऋणी है।

कहा जाता है कि इन कहानियों के लेखक श्रीविष्णुशर्मा ने इन्हें पाटलिपुत्र के राजकुमारों को शिक्षा देने के लिए लिखा था। इन कहानियों में मनु, शुक, पराशर, व्यास, चाणक्य आदि हमारे जितने नीतिकार हुए हैं उनके नीति-शास्त्र का निचोड़ आ गया है। नीति के अतिरिक्त उनमें तत्कालीन भारत के जीवन की झाँकी भी मिलती है।

पंचतंत्र की इन्हीं कहानियों को मैंने इस पुस्तक में एक विशेष उद्देश्य से फिर से लिखा है और उनका संपादन किया है। इसमें मैंने न तो मूल पुस्तक की सभी कहानियाँ दी हैं और न उनका वही क्रम ही रक्खा है। ऐसा करने का मेरा अपना कारण है। दूसरी बात जो मैंने की है वह यह कि प्रत्येक कहानी को अपना एक स्वतंत्र रूप दे दिया है। मूल पंचतंत्र में एक कहानी के अंदर दूसरी और दूसरी के अंदर तीसरी कहानी इस प्रकार गुँथी हुई है कि पढ़ते-पढ़ते साधारण पाठक एक भूल-भुलैया सी में पड़ जाता है। गर्भ-कथा के समाप्त होने पर आगे चलकर जब फिर मूल कथा का प्रसंग आता है तो पाठक को उसका सिलसिला जोड़ने में असुविधा होती है। जिस श्रेणी के पाठकों के लिए मैंने इन कहानियों को चुना और फिर से लिखा है उनके लिए प्रत्येक कहानी का मार्ग सीधा और साफ करने का काम मैंने किया है। आशा है, विद्वानों को यह प्रयास पसंद आएगा।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात जो मैंने की है वह यह कि कहानियों के बीच-बीच में मूल पुस्तक में जो लम्बी-लम्बी नीतिशास्त्र की शिक्षाएँ आती थीं उन्हें मैंने बहुत ही संक्षिप्त कर दिया है। उसके स्थान पर मुख्य शिक्षा को कहानी के पहले या पीछे मूल संस्कृत श्लोक में देकर उसका अर्थ हिंदी में दे दिया है। ऐसा करके मैंने कहानी को स्वयं ही अपनी नीतिशिक्षा कहने के लिए छोड़ दिया है।

भारद्वाज

दीपावली संवत् २०१० वि०, लखनऊ

विषय-सूची

—————

पहली कथा

कौवी तथा सर्प



किसी विशाल वट वृक्ष पर एक कौवा और कौवी घोंसला बनाकर रहते थे। उसी वृक्ष के खोल में एक भयंकर काला सर्प भी रहता था, जो सदा उनके अंडे खा जाया करता था। इतना कष्ट पाने पर भी कौवा अपने घोंसले से मोह के कारण वहीं रहता था।

मृग, कायर तथा कौवा अपमानित होने पर भी अपना घर नहीं छोड़ सकते पर शूरवीर पुरुष, सिंह तथा गज गौरव की रक्षा हेतु अपने तुच्छ प्राणों को हँसते हुए दे देते हैं।

अंत में एक दिन कौवी ने अपने पति के पैर पकड़ कर कहा—स्वामी, मेरे कितने ही बच्चे इस नीच सर्प ने खा डाले और अब मुझे अपने बच्चों का वियोग असह्य हो उठा है। चलिए, हम लोग किसी अन्य वृक्ष पर चलकर अपना घोंसला बनाएँ।

शत्रु से बड़ा कोई रोग नहीं, स्वास्थ्य से बढ़कर कोई मित्र नहीं, मातृप्रेम के समान कोई प्रेम नहीं तथा पेट पालने की चिन्ता के समान कोई चिन्ता नहीं। फिर यहाँ रहने में हम लोगों

का जीवन भी सदा खतरे में ही है। यह सुनकर कौवा बहुत चिंतित हो गया और कुछ देर सोचकर उसने कहा—प्रिये, हम लोग वर्षों से इसी वृक्ष पर रहते चले आये हैं। हम इसको इस प्रकार उजाड़ कर नहीं जा सकते।

जहाँ खाने-पीने की कुछ भी सुविधा रहती हो, उस स्थान को नहीं छोड़ना चाहिए।

फिर भी मैं किसी युक्ति से अवश्य इस नीच को काल का ग्रास बनाऊँगा।



उसकी पत्नी ने कहा—किन्तु इस महा भयङ्कर सर्प को आप किस प्रकार मारेंगे? कौवे ने कहा—यद्यपि उसे मारने की शक्ति मुझमें नहीं है, फिर भी मेरे कई चतुर मित्र हैं, मैं उनसे जाकर कोई युक्ति पूछूँगा। वे लोग अवश्य ही कोई न कोई युक्ति सोच निकालेंगे, जिससे इस नीच का नाश होगा।

इतना कहकर वह तुरंत ही उड़कर एक दूसरे पेड़ पर गया जिसके नीचे उसका अंतरंग मित्र सियार रहता था। कौवे ने अपने मित्र सियार को बुलाकर अपना सारा दुख कहा और उससे इसके निवारण का उपाय पूछा।

सियार ने कहा—तुम तनिक भी चिंता न करो, मित्र। मैंने बड़ा सुन्दर उपाय सोचा है और उस नीच सर्प की मौत आ ही गई समझो।

निर्दयी प्राणी नदी के किनारे के वृक्ष की तरह स्वयं ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

कौवे ने कहा—भला बताओ तो मित्र इस नीच का नाश कैसे होगा। सियार ने कहा—किसी राज्य में जाओ और किसी बड़े साहूकार का एक सोने का हार, जब वह उतारकर नहाने जा रहा हो, उठा लाओ। उस हार को उसी सर्प के बिल में डाल दो। जब उसके नौकर हार की खोज में आएँगे और उसे सर्प के बिल में देखेंगे तो वे फौरन् उसको मार डालेंगे।

यह सुनकर कौवा और उसकी पत्नी हार की खोज में उड़ चले। उड़ते-उड़ते कौवी एक राजमहल के ऊपर जा पहुँची। उसने देखा कि महल के निकट ही एक सरोवर में वहाँ की रानी तथा अन्य स्त्रियाँ स्नान कर रही हैं। उनके कपड़े तथा गहने सरोवर के किनारे ही



राजा के रक्षकों ने सर्प को मार डाला

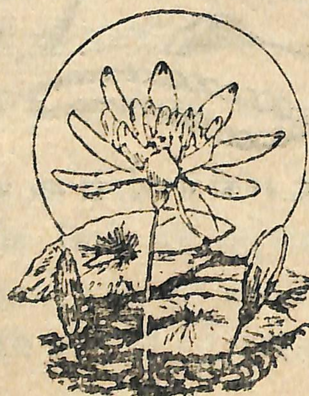
रक्खे हुए है। कौवी ने उन गहनों में से एक अत्यन्त ही सुन्दर हार उठा लिया और वहाँ से उड़ चली।

जब महल के रक्षकों ने कौवी को हार चोंच में दबाए, उड़ते हुए देखा तो वे सब के सब तुरंत ही उसके पीछे भागे। कौवी ने वह हार ले जाकर सर्प के बिल में डाल दिया और स्वयं दूर पर एक डाल पर बैठकर तमाशा देखने लगी। रक्षकों ने कौवी को हार वृक्ष पर डालते हुए देखा था। वे सब तुरंत ही पेड़ पर चढ़ गये। उन्होंने हार को सर्प के बिल में पड़े देखा जिसके निकट ही वह फन फैलाए बैठा था। यह देखकर उन्होंने पहले तो सर्प को मार डाला और फिर हार उठाकर लौट गये।

इसके बाद कौवा और उसकी पत्नी उस वृक्ष पर आनंदपूर्वक रहने लगे।

उपायेन हि यत कुर्यात्तन्न शक्यं पराक्रमैः।
काक्या कनकसूत्रेण कृष्णसर्पो निपातितः॥

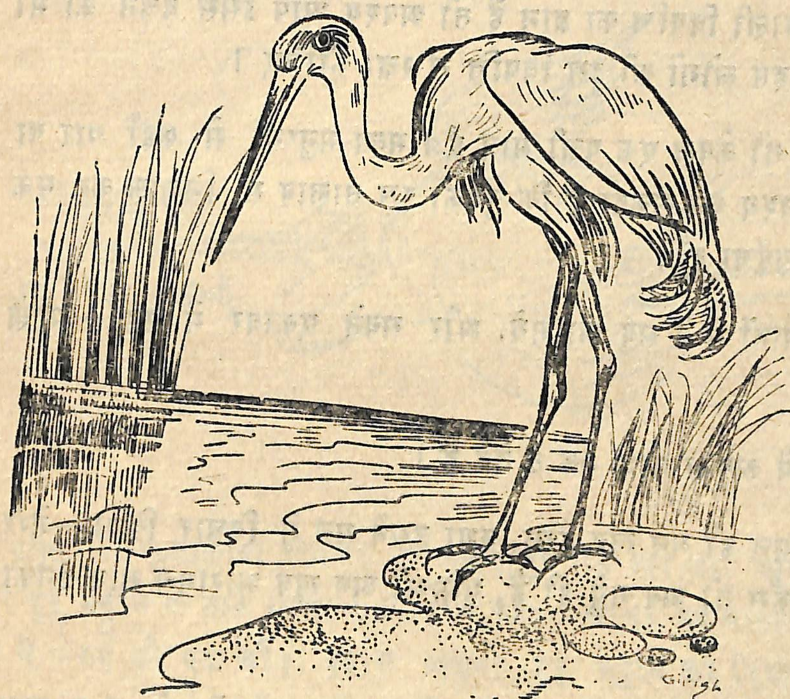
अर्थात्—जो कार्य उपाय से हो सकता है वह पराक्रम से नहीं सिद्ध हो सकता। कौवी ने स्वर्णहार के द्वारा काले साँप को मार डाला।



दूसरी कथा

बगुला और केकड़ा

किसी तालाब के किनारे एक बगुला रहता था। वृद्ध हो जाने के कारण उसके शरीर की फुर्ती घट गई थी। इस कारण वह अपने लिये पर्याप्त मछलियाँ न मार पाता था। अतः उसने मछलियों को आसानी से पकड़ने की एक अद्भुत युक्ति सोची। वह तालाब के किनारे मौन होकर बैठ गया और दुख तथा शोक की मुद्रा धारण कर ली। यदि कभी कोई मछली उसकी पहुँच के अन्दर भी आ जाती तो वह उसे न पकड़ता।



उसी तालाब में एक केकड़ा भी रहता था। उसने जब बगुले को इस दशा में देखा तो निकट आकर कहा—चाचा, आज तुम इतने दुखी क्यों हो और अपने नित्य के विनोद तथा भोजन को क्यों त्यागे बैठे हो?

बगुले ने कहा—मित्र, अब तक तो मैं निश्चिन्त होकर खूब मछलियाँ खा-खाकर मोटा हो गया था और जीवन का आनन्द उठाता था। लेकिन उसमें अब बाधा उपस्थित होने वाली है। वह यह है कि जल्दी ही तुम लोगों पर एक महान् विपत्ति आने वाली है। मैं बूढ़ा हो चला हूँ इसलिए तुम्हारी इस विपत्ति से मेरे जीवन का आनन्द भी समाप्त हो जायगा। इसीलिये मैं दुखित हूँ।

केकड़े ने कहा—चाचा, यह विपत्ति कैसी आनेवाली है?

बगुले ने उत्तर दिया—आज कुछ मछुवे इधर से बातचीत करते जा रहे थे जो मेरे कानों

में भी पड़ी। वे लोग आपस में तुम्हारे इस तालाब की ओर संकेत करके कह रहे थे कि इसमें अगणित मछलियाँ तथा केकड़े हैं। जल्दी ही हम लोग इस तालाब में भी जाल डालेंगे। अभी नगर के निकटवाली झील में दो-चार दिन और शिकार करेंगे। यही मेरे इस घोर दुख का कारण है, क्योंकि जब वे लोग तुम सब लोगों को पकड़ ले जाएँगे तो मेरा भी भोजन समाप्त हो जाएगा। इसी चिंता में आज मेरी इच्छा तनिक भी कुछ खाने की नहीं होती।

जब तालाब में रहने वाले अन्य जानवरों ने बगुले की चाल भरी बात सुनी तो वे भय से घबड़ाकर बगुले के चारों ओर जमा हो गये। और सबके सब कोई "चाचा" कोई "पिता" कोई "बंधु" कोई "भाई" इत्यादि नाना प्रकार से बगुले को सम्बोधन करके कहने लगे—पूज्यवर, जब आपको हमारे ऊपर आनेवाली विपत्ति का ज्ञान है तो अवश्य आप इससे बचने का भी उपाय जानते होंगे। दया कर हम लोगों की इस विपत्ति से रक्षा कीजिए।

बगुले ने कहा—भाई, मैं तो केवल एक पक्षी मात्र हूँ। भला मनुष्यों से कहाँ पार पा सकता हूँ? किंतु हाँ इतना अवश्य कर सकता हूँ कि तुमको इस तालाब से निकाल कर एक दूसरे पाताल-फोड़ तालाब में पहुँचा दूँ।

उसकी इन धूर्तता भरी बातों में वे सब आ गये, और सबने एकस्वर में कहा—पहले हमें ले चलो—पहले हमें।

शूरवीर पुरुष परोपकार में अपना प्राण तक दे देते हैं।

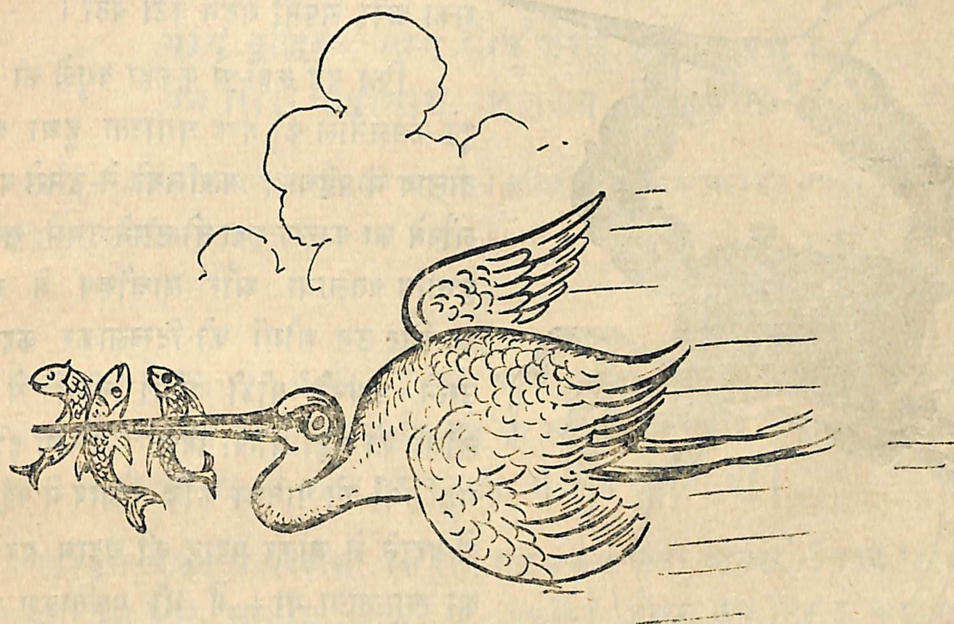
यह सुनकर धूर्त बगुला मन ही मन खूब हँसा, तथा उसने मन में विचार किया—मेरी धूर्तता भरी बातों में यह सब फँस तो अब गये ही हैं, मुझे भी अब खूब आराम के साथ इनका भक्षण करना चाहिये।

ऐसा भली भाँति अपने मन में विचार कर उसने घबराए हुए जलचरों को आश्वासन दिया और कुछ मछलियों को अपनी चोंच में दबाकर उड़ चला। वहाँ से कुछ दूर जाकर पर्वत की एक चौड़ी चट्टान पर बैठकर वह धूर्त उन मछलियों को खा गया।

इसी प्रकार नित्य वह मछलियों को ले जाता और चट्टान पर बैठकर खा जाता और आनंद उठाता था। नित्य तालाब की अन्य मछलियों को गढ़गढ़कर नई बातें सुना देता और उन्हें आश्वासन दिए रहता।

एक दिन केकड़े ने, जो मृत्यु से अधिक भयभीत हो गया था, बगुले से गिड़गिड़ाकर

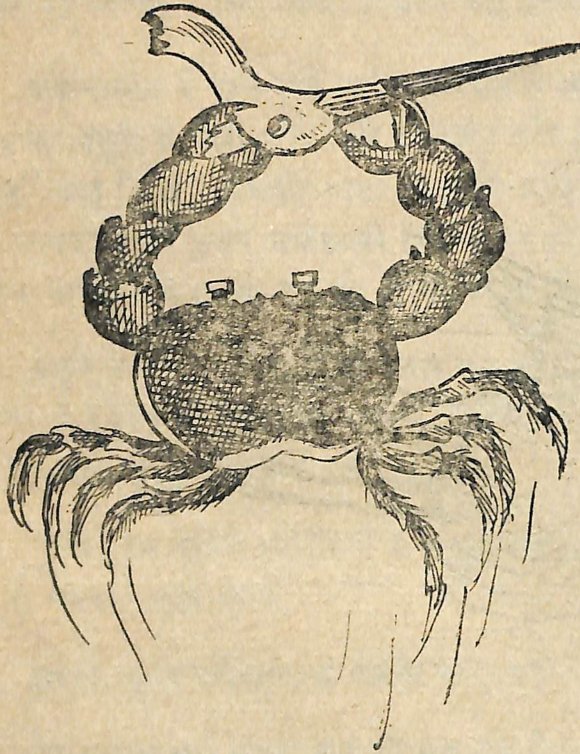
कहा—चाचा, मुझे भी इस मृत्यु के मुँह से निकाल दो, आजीवन तुम्हारा उपकार मानूँगा। बगुले ने सोचा—मैं भी रोज-रोज मछली ही मछली खाते-खाते ऊब गया हूँ, क्यों न आज इस केकड़े का स्वाद लिया जाय। यह सोचकर उसने केकड़े को चोंच में दबा लिया और उड़ चला।



बगुला अन्य तालाबों इत्यादि को बचाते हुए उड़ रहा था, और उतरने के लिए किसी जलती हुई चट्टान के ताक में था। केकड़े ने कहा—चाचा, वह पाताल-फोड़ तालाब कहाँ है। बगुले ने केकड़े को एक चौड़ी धूप से जलती हुई चट्टान को दिखाकर कहा—देखो वह है पाताल-फोड़ तालाब, जहाँ सारी मछलियों को विश्राम मिला है और तुम्हारी बारी भी उसी महाविश्राम की आ गई है। केकड़े ने जो नीचे झुककर देखा तो एक चट्टान पर अगणित मछलियों की ठठरियों का ढेर लगा देखा। यह देखकर वह अत्यन्त भयभीत हो उठा और मन में कहने लगा कि स्वार्थसाधन के लिए मित्र शत्रु, तथा शत्रु मित्र बनते हैं पर परोपकार के लिए स्वार्थ का त्याग करनेवाले बहुत कम हैं। जो स्वार्थसाधन के लिए शत्रुओं पर विश्वास करते हैं वे पश्चात्ताप करते हैं। इस पापी ने जब सारी मछलियाँ खा डालीं तो भला मुझे कब छोड़ेगा। मेरी रक्षा का इस समय अब उपाय ही क्या हो सकता है ? किन्तु मैं अभी भी व्यर्थ की बातें ही सोच रहा हूँ। कष्ट के आने पर उसका सामना

करना चाहिए, हतोत्साह नहीं होना चाहिए। इससे पहले कि यह मुझे इस चट्टान पर पटके क्यों न मैं अपने चारों पंजे गड़ाकर इसकी गर्दन से लिपट जाऊँ।

ऐसा विचारकर केकड़े ने अपने नुकीले पंजों को बगुले के गले में गड़ा दिया और वह गर्दन से कसकर चिपट गया। यद्यपि बगुले ने उसके पंजों से बचने की बहुत कोशिश की लेकिन खूब जकड़ा होने के कारण बच न सका और अपनी गर्दन कटा बैठा।



फिर बड़े कष्टों से केकड़ा बगुले का सिर टूटे कमलनाल की तरह घसीटता हुआ अपने तालाब में पहुँचा। मछलियों ने उससे वापस लौटने का कारण पूछा तो उसने उनसे सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया और साक्षीरूप में बगुले का सिर उन लोगों को दिखलाकर कहा—उसने अपनी मीठी मीठी बातों से तुम लोगों को बड़ा धोखा दिया। नित्य ही वह मछलियों को पाताल-फोड़ तालाब में पहुँचाने के बहाने ले जाकर पहाड़ की चट्टान पर बैठ कर खा जाता था। मैं भी मूर्खतावश उसके जाल में आ गया था पर मेरा जीवन अभी शेष था इसलिए मेरी समझ में आ गया कि वह इन भोलेभाले जीवों को धोखा देता है जो उस पर सरलता से विश्वास कर लेते हैं। मैं उसका सिर ले आया हूँ। अब तुम लोग अपना-अपना कष्ट भूल जाओ। भविष्य को भगवान् के भरोसे छोड़ दो और विद्वानों की इस बात को याद रक्खो कि—

केवल सुनी बात पर विश्वास न करना चाहिये। बिना विचारे कार्य करने से हँसी होती है।

भक्षयित्वा बहून् मत्स्यानुत्तमाधममध्यमान्।
अतिलौल्याद्बकः कश्चिन्मृतः कर्कटकग्रहात्॥

अर्थात्—छोटी-बड़ी बहुत सी मछलियों को खाकर जिह्वा की लोलुपतावश कोई बक केकड़ा के पकड़ लेने से मृत्यु को प्राप्त हुआ।

———

तीसरी कथा

मंदबुद्धि और खरगोश

यस्य बुद्धिर्बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।
वने सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ॥

अर्थात्—शारीरिक बल से बुद्धिबल श्रेष्ठ है। बुद्धिहीन बलवान् नहीं हो सकता। वन में मदमत्त सिंह बुद्धिमान् खरगोश के द्वारा मार डाला गया।

किसी वन के एक भाग में मंदबुद्धि नाम का एक सिंह सदा ही अपने घमंड में चूर रहता था। अन्य जानवरों का वह निर्दयतापूर्वक वध कर डालता था और फिर भी नहीं सन्तुष्ट होता था। किसी जानवर को पाकर वह कदापि जीता न छोड़ता था।

उसकी इस आदत से घबड़ाकर एक रोज उस वन के सभी जानवर, जिनमें हिरन, वनैले भैंसे, जंगली बैल और खरगोश आदि थे, एकत्रित होकर उस सिंह के पास गये और अत्यन्त नम्रतापूर्वक उसके चरणों में सिर झुकाकर उससे निवेदन की—राजन्! व्यर्थ का यह रक्तपात बन्द कर जीवों का वध समाप्त करिए, अन्यथा दैव भी रुष्ट हो जायँगे। नित्यप्रति हम सब जानवरों को मारने से क्या लाभ? आपका पेट तो एक ही प्राणी से भर जायगा। इसलिए हम चाहते हैं कि आप शिकार के लिए कहीं जाने का कष्ट न करें। यहीं बैठे-बैठे बारी-बारी से प्रतिदिन कोई न कोई पशु आपके पास आ जायगा। ऐसा करने से आपको भी तकलीफ न उठानी पड़ेगी और हमारा भी सर्वनाश न होगा। आप ऐसा कर राजधर्म का पालन करिए।

मंदबुद्धि ने पूछा—राजधर्म क्या है? मुझे समझाकर कहो।

एक चतुर पशु बोला—स्वामी! नीतिग्रन्थों में लिखा है कि ग्वालों की तरह पृथ्वी का पालन करनेवाले राजाओं को प्रजारूपी गाय का पालन-पोषण करके उसके धनरूपी दूध को धीरे-धीरे दुहना चाहिये और उन्हें न्याय की वृत्ति सदा बरतनी चाहिए। जो राजा मोहवश

होकर प्रजा को भेड़-बकरी की तरह मारता है, उसकी एक ही बार तृप्ति होती है, दूसरी बार नहीं।

पशुओं की बातें सुनकर मंदबुद्धि ने कहा—तुम सच कहते हो पर यदि मेरे पास रोज एक जानवर नहीं आया तो निश्चय ही मैं सबको मार खाऊँगा।

सब पशुओं ने एकस्वर में कहा—यही होगा, स्वामी।

यह प्रतिज्ञा कर सब पशु जंगल को लौट गये और निडर होकर वन में फिरने लगे। हर दिन अपनी बारी आने पर एक पशु सिंह के पास चला जाता था।

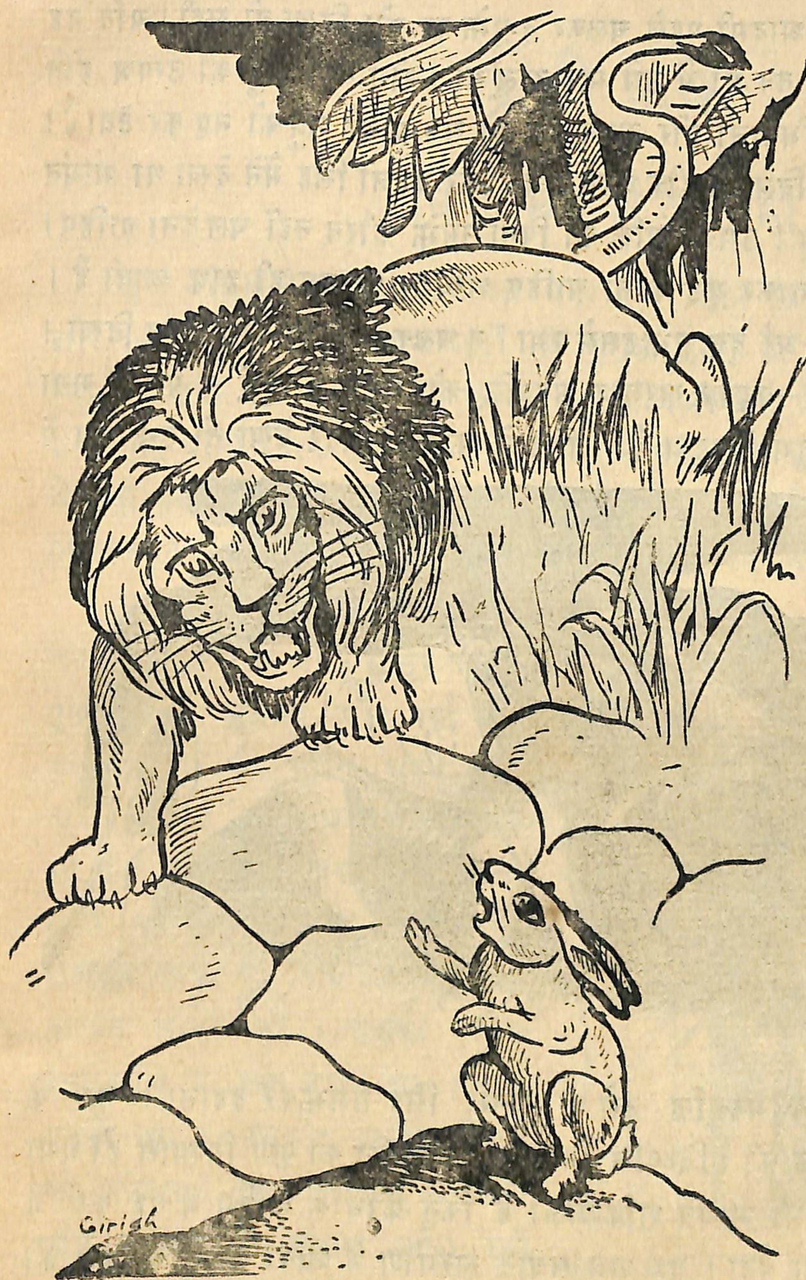
एक दिन एक खरगोश की बारी आई। व्याकुल हृदय से धीरे-धीरे जाते हुए उसने मार्ग में एक कुआँ देखा। कुएँ पर जाकर उसने पानी में अपनी परछाईं देखी। उसे देखकर उसने सोचा मैं अपनी बुद्धि से मंदबुद्धि को इसी कुएँ में गिराऊँगा। यह सोचकर वह मार्ग में कुछ देर और ठहर गया। जब वह मंदबुद्धि के पास पहुँचा तो दिन ढल चुका था। भोजन का समय बीत जाने के कारण मंदबुद्धि आग-बबूला हुआ बैठा था। उसने निश्चय कर लिया था कि कल को सबेरे ही मैं वन को निर्जीव करके छोड़ूँगा।

वह यह सोच ही रहा था कि खरगोश धीरे-धीरे जाकर उसे प्रणाम करके आगे खड़ा हो गया। क्रोध में भरे मंदबुद्धि ने उसे झिड़कते हुए कहा—अरे नीच खरगोश! एक तो तू यों ही छोटे शरीरवाला है और दूसरे देर करके आया है। तेरे इस अपराध का उचित दंड यही होगा कि तुझे मारकर कल सबेरे सब पशुओं को मार डालूँगा।

यह सुनकर खरगोश ने बहुत ही नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर अत्यंत खिन्न मन से कहा—स्वामी, इसमें मेरा या वन के अन्य जन्तुओं का कुछ भी दोष नहीं है। कृपया ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनें। "अच्छा-अच्छा", सिंह ने गरजने हुए कहा, "इससे पहले कि मैं तुझे अपने जबड़ों से चबाऊँ जल्दी अपनी बात कह।"

खरगोश ने कहा—स्वामी, आज आपके आहार के लिये खरगोश की बारी थी। डील में मुझे अत्यंत छोटा देखकर ही अन्य वन-बंधुओं ने मेरे साथ आपके आहार निमित्त पाँच खरगोश और भेजे थे। किंतु मार्ग में ही भूमि की एक खोह से निकलकर एक दूसरे सिंह ने हमें रोक लिया और गरज कर कहा—दुष्टो, तुम लोग कहाँ जा रहे हो? अपनी मृत्यु से पहले अपने अभीष्ट देवता का स्मरण करो। इस पर मैंने उससे कहा—हम लोग अपने आपस के समझौते के अनुसार अपने स्वामी

मंदबुद्धि का आहार बनने जा रहे हैं। किंतु उसने कहा—यह वन मेरा है। इस कारण यहाँ के सारे वनचरों को मुझसे ही सम्बन्ध रखना चाहिए। मंदबुद्धि अत्यंत नीच है। जाओ उसे फौरन् बुला कर लाओ। आज जो भी हम दोनों में जीतेगा वही इस वन पर राज्य करेगा और उसी का यहाँ के वनचरों पर अधिकार होगा। उसकी आज्ञा पाकर ही मैं आपकी सेवा में आ सका हूँ और यही मेरे देर से आने का कारण है। इस पर क्या करना चाहिए, आप जैसे महान् बुद्धिमान् ही समझ सकते हैं।



मंदबुद्धि यह सुनकर क्रोध से उबल उठा और खरगोश से बोला—चल, फौरन् मुझको उस धूर्त की सूरत दिखा। जो क्रोध मुझे अभी तक वनचरों पर था आज उस पर उतारे बिना मैं चैन से नहीं बैठ सकता। उस नीच को यह याद रखना चाहिए था बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय।

खरगोश बोला—सच है स्वामी, धन्य है आपको। शूरवीर अपमानित होकर जीना नहीं चाहते। किंतु वनराज! यह सिंह एक गढ़ में रहता है। यह मैं आपको पहले ही बता

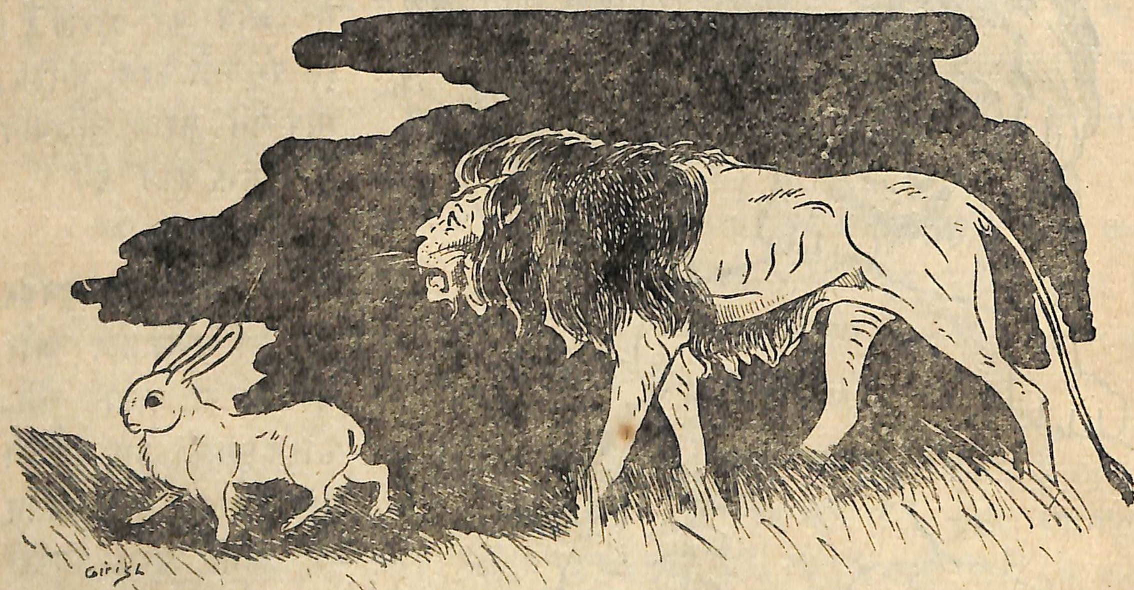
चुका हूँ। विचार कीजिए, दुर्ग में स्थित शत्रु को जीतना कठिन है। अतः बुद्धिमान् नृप दुर्ग का आश्रय लेते हैं।

मंदबुद्धि ने कहा—भले आदमी पहले चलकर तू मुझे वह चोर दिखा तो सही। यदि वह कायर दुर्ग में भी छिपा होगा तब भी मैं उसे मार डालूँगा। रोग तथा शत्रु को उत्पन्न होते ही नष्ट कर देना चाहिए। अभिमानी वीर अपने बल को समझ कर शत्रु को नष्ट कर देता है।

खरगोश ने कहा—आप बिलकुल ठीक कहते हैं पर फिर भी जो सिंह मैंने देखा था अत्यंत बलशाली था। इसलिए हे प्रभु! उसकी शक्ति को बिना समझे फौरन् नहीं चल देना चाहिए। शत्रु की शक्ति का अनुमान लगाकर युद्ध करना चाहिए अन्यथा पराजय ही हाथ आती है।

इस पर मंदबुद्धि ने कहा—अरे दुष्ट, तुझे इससे क्या? तू चलकर मुझे वह सिंह तुरंत दिखा।

"जैसी आपकी आज्ञा"—कहकर खरगोश मंदबुद्धि को वन में एक कुएँ के पास ले गया और कहा कि वह सिंह इसी दुर्ग में रहता है। सिंह ने झाँककर अंदर देखा तो उसे जल में



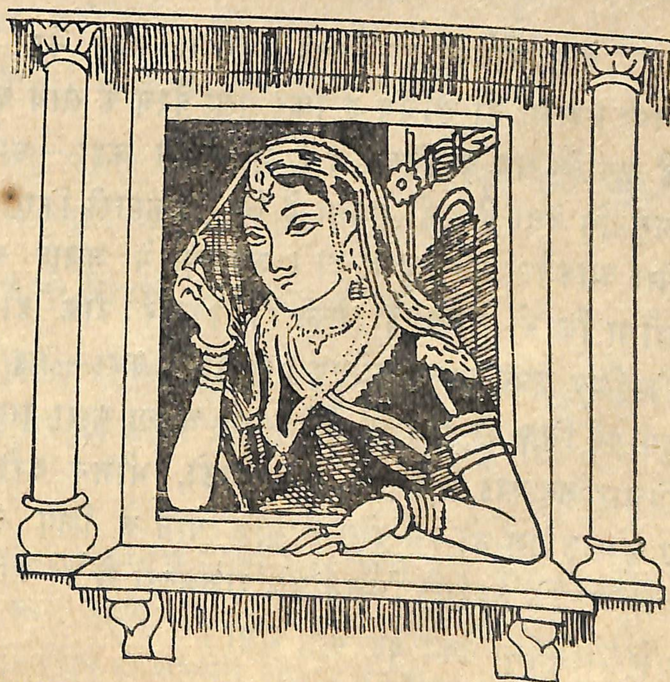
अपनी परछाईं दिखा दी। मूर्ख मंदबुद्धि उसे ही दूसरा सिंह समझकर दहाड़ा। कुएँ के अंदर से भी उससे दुगुनी दहाड़ की प्रतिध्वनि निकली। मंदबुद्धि को पूर्ण विश्वास हो गया कि उस दुर्ग के अंदर का सिंह भी अत्यंत शक्तिशाली है किंतु क्रोध के आवेग में वह कुएँ में कूद पड़ा और अपनी जान गँवा बैठा। यह शुभ संवाद खरगोश ने जाकर अन्य वनचरों को सुनाया जिसे सुनकर सभी ने खरगोश की चतुराई की बहुत प्रशंसा की। फिर सब वनचर आनन्द और निश्चिंततापूर्वक उस वन में रहने लगे।

चौथी कथा

विष्णुरूप में जुलाहा

सुदूर दक्षिण देश में भूसी नामक नगर में दो मित्र रहते थे। इनमें एक जुलाहा था और दूसरा बढ़ई। अपने अपने कार्यों में कुशल होने के कारण दोनों ने अपार धन पैदा कर लिया था। दोनों अपने धन का खूब भोग भी करते थे। नौ घंटे दिन में काम करने के पश्चात् दोनों नित्य सायंकाल नाना प्रकार के वस्त्राभूषण धारण कर अपने को भाँति-भाँति के सुगन्धित द्रव्यों से सजाकर नगर के मंदिरों और बागबगीचों आदि में खूब मनोविनोद किया करते थे और इस प्रकार अपना समय आनंद से बिताते थे।

एक दिन नगर में कोई बहुत बड़ा पर्व था। नगर के सभी गण्यमान्य सज्जन एवं जनसाधारण अपने-अपने सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजकर मंदिरों इत्यादि की परिक्रमा करते घूम रहे थे। जुलाहा और बढ़ई भी अन्य लोगों की भाँति अपने को खूब सजाकर इधर-उधर घूम फिर रहे थे। एकाएक उनकी दृष्टि राजमहल की खिड़की पर बैठी हुई राजकुमारी पर पड़ गई। राजकुमारी अत्यंत सुन्दर थी। उसका प्रत्येक अंग साँचे में ढला हुआ सा मालूम पड़ता था। उसकी सुन्दर वेणी की शृंखलाएँ उसके चंद्रमुख के चारों ओर घटाओं के समान घहरा रही थीं। कानों में सुशोभित स्वर्ण का बाला झुलन-खटोले जैसा लहरा



रहा था जैसे उस पर प्रेमदेव झूल रहे हों। उसका मुख नवविकसित जलकेतकी के समान सुन्दर था। सारी जनता की आँखें मंत्रमुग्ध सी उसी के चंद्रानन की ओर लगी थीं। राजकुमारी की

अपार सुन्दरता को देख जुलाहा उस पर मोहित हो गया और उसके प्रेम में पीड़ित होकर अपने घर लौट आया। सारे संसार में उसे अब केवल राजकुमारी ही दिखाई पड़ती थी। घर आकर वह ठंढी साँसें लेता हुआ अपने बिस्तरे पर पड़ रहा। अब सिवाय उस मूर्ति के ध्यान के उसे और कुछ न सूझता था। बार-बार कहता था—हे प्रियतमे, तुम्हें देखकर मेरी शान्ति जाती रही है। अब तुम्हारे बिना मेरा जीवन निष्फल है।

इसी प्रकार सोचते-विचारते उसका वह दिन बीत गया। दूसरे दिन नित्य की भाँति उसका मित्र बढ़ई सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए आ पहुँचा। किन्तु यहाँ आकर उसने जुलाहे को अस्तव्यस्त हालत में अपने पलँग पर पड़ा पाया। उसने मित्र की ऐसी हालत देखकर घबराकर सारा हाल पूछा पर जुलाहा प्रेमोद्वेग के कारण कुछ भी न कह सका। इस पर बढ़ई ने अपने मित्र के शरीर और हृदय आदि की परीक्षा ली और कहा मेरा विचार ठीक है, मित्र। अवश्य तुम प्रेमरोग से पीड़ित हो। जुलाहे ने यह सोचकर कि मित्र को हाल बतलाने से मेरा दुख शायद कुछ हलका हो जाय। फिर वही शायद कोई युक्ति भी बतलावे। क्योंकि मित्र से अपना कष्ट कहने से चित्त शान्त हो जाता है तथा कष्ट से मुक्त होने की युक्ति भी मिल जाती है।

ऐसा सोचकर उसने बढ़ई से सारा हाल कह दिया। यह सुनकर बढ़ई सोच में पड़ गया। राजा तो क्षत्रिय है फिर भला वैश्य के साथ क्षत्रिय कन्या का विवाह कैसे हो सकता है क्योंकि यह धर्मविरुद्ध है। जुलाहे ने कहा—धर्म क्षत्रिय को तीन वर्ण से विवाह की अनुमति देता है। हो सकता है कि राजकुमारी किसी वैश्य की संतान है और इसी कारण मेरा आकर्षण उधर हुआ हो। जब बढ़ई ने जुलाहे को अपने विचार पर दृढ़ देखा तो उसने सोचा कि हो सकता है इसका ही विचार ठीक हो। यह सोचकर उसने जुलाहे से पूछा कि फिर क्या करना चाहिए। जुलाहे ने कहा—यह तो मैं भी नहीं जानता पर क्योंकि तुम मेरे मित्र हो इसलिये मैंने तुमको अपना सारा हाल बतला दिया। देर तक इस पर सोच विचार कर बढ़ई ने कहा—अच्छा उठो, भोजन करो और अपना चित्त स्थिर करो। कुछ न कुछ उपाय तो इस रोग से मुक्ति पाने के लिये सोचना ही होगा। मैं कोई ऐसी युक्ति सोचूँगा कि तुम्हारा मिलन उस राजकन्या से हो जाय। इतना कहकर जुलाहे को आश्वासन और सान्त्वना देकर वह चला गया।

दूसरे दिन बढ़ई एक लकड़ी का गरुड़ बनाकर लाया जिसके अंदर एक यंत्र लगा था। वह गरुड़ इतना सुन्दर बना था कि सचमुच ही भगवान विष्णु का वाहन प्रतीत होता था।

उसने जुलाहे से कहा—मित्र, यह उड़नेवाला पक्षी है । जब तुम इसकी चाभी घुमा दोगे यह उड़ने लगेगा । अतः तुम जहाँ चाहो जा सकते हो और जहाँ उतरना चाहो वहीं इसकी चाभी फिर घुमा देना । रात में जब सब मनुष्य सो जायँ, तुम भगवान् विष्णु का वेश धारण कर राजकुमारी के पास चले जाना । मैंने भली भाँति पता लगा लिया है वह अकेले ही अपने महल की छत पर सोती है । वहाँ जाकर तुम जैसे भी ठीक समझो राजकुमारी को विवाह के लिये राजी कर लेना ।

बढ़ई के चले जाने के बाद जुलाहे ने अपना सारा दिन बड़ी बेचैनी से काटा । रात्रि होते ही वह नहा-धोकर अपने शरीर में नाना प्रकार के सुगंधित द्रव्य लगाकर तथा भगवान् विष्णु का वेश धारण करके जाने के लिये तैयार हो गया । ठीक आधी रात को जब सारा नगर निद्रादेवी की गोद में था, वह अपने गरुड़ पर बैठकर राजकुमारी के महल की ओर चला ।

इधर राजकुमारी अपने महल के छज्जे पर अपनी सुन्दर मुलायम सेज पर स्निग्ध ज्योत्स्ना में स्नान करती हुई-सी अकेली पड़ी हुई प्रेमविभोर सी होकर चंद्रदेव को निहार रही थी । सहसा उसने गरुड़ पर सवार भगवान् विष्णु (जुलाहे) को आकाश से अपने महल की छत पर उतरते हुए देखा । वह आदरवश तुरंत उठ खड़ी हुई और भगवान् के चरणों पर लोट कर बोली—भगवन् ! मेरा अहो भाग्य, जो आपने दासी को दर्शन देने का कष्ट स्वयं आकर किया । आज्ञा दीजिए, प्रभो ! मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

राजकुमारी की बात सुनकर छद्मवेशी जुलाहे ने अपने कंठ को देवताओं जैसा मधुर बनाकर गंभीर स्वर में कहा—बाले, तुम्हीं मेरे भूमि पर पधारने का कारण हो ।

"किंतु मैं तो एक नश्वर प्राणीमात्र हूँ जो आपकी ही प्रेरणा से यहाँ हूँ ।"

"नहीं, तुम मेरी पत्नी हो जो एक शापवश मृत्युलोक में आकर जन्मी हो । मैंने ही अब तक तुमको नश्वर पुरुषों से अलग रक्खा । अब वह समय आ गया है कि तुम्हारे साथ स्वर्ग की रीति के अनुसार विवाह करूँ ।"

राजकुमारी अपना ऐसा सौभाग्य देखकर आनन्द से सिहर उठी और बार बार भगवान् के चरणों में लोटकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करने लगी । उसने सहर्ष उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली । इसके उपरान्त दोनों का स्वर्ग की रीति के अनुसार विवाह हो गया ।

जुलाहा नित्य ही इसी प्रकार छद्म वेश में राजकुमारी के पास आने लगा और उसके

दिन आनन्दपूर्वक कटने लगे। सवेरा होने से पहले ही वह गरुड़ पर सवार हो जाता था और राजकुमारी से कह देता था कि मैं अब विष्णुलोक जा रहा हूँ।

इसी प्रकार आनंद से दिन कट रहे थे कि एक दिन महल के रक्षकों ने देखा कि राजकुमारी एक पुरुष से वार्त्तालाप कर रही है। वे लोग डर के मारे तुरंत ही राजा के पास सूचना लेकर पहुँचे। राजा से कहा—महाराज! हमें अभयदान दें। आपसे कुछ गुप्त बात कहनी है। राजा के अभयदान दे देने पर उन्होंने कहा—महाराज! हम लोग सदैव ही सतर्क रहकर राजमहल की पहरेदारी करते हैं। किन्तु अब हमें ऐसी शंका होती है कि कुमारी माधुरी के महल में रात्रि में कोई पुरुष आता है। इसमें हम लोग बिना आपकी सहायता या अनुमति के कुछ भी नहीं कर सकते। यह सुनकर राजा बहुत ही चिंतित होकर सोचने लगा—कन्या पैदा होते ही उसकी चिन्ता पिता के ऊपर सवार हो जाती है कि किस प्रकार यह सुयोग्य वर के हाथ में पड़ेगी तथा इसका चरित्र पवित्र रहेगा।

इसके बाद अपनी रानी से जाकर उसने सारा वृत्तान्त कहा और सारी बातों का भली प्रकार से पता लगाने का आदेश दिया। रानी भी यह सुनकर बहुत ही चिंतित हो गई। प्रातःकाल होते ही वह तुरन्त राजकुमारी के पास गई और क्रोध तथा भर्त्सना भरे स्वर में कहा—अरी कुलटा, क्या तू वंश का कलंक बनकर आई है जो इस प्रकार रात्रि में पर-पुरुष से भेंट करती है। यदि तुझे अपने प्राण प्यारे हैं तो सच सच बता कि वह अधम पुरुष कौन है।

इस पर राजकुमारी ने लज्जित होते हुए सारा हाल विष्णु भगवान् के आने से लेकर अपने विवाह तक का बता दिया। यह सुनकर रानी आश्चर्य में पड़ गई। फिर एकाएक वह प्रसन्नता से फूल उठी और तुरन्त ही जाकर राजा से कहा—आपके भाग्य जाग गये हैं स्वामी! राजकुमारी के पास आने वाला पुरुष और कोई नहीं स्वयं भगवान् विष्णु हैं, जो आपकी कन्या को स्वीकार कर चुके हैं। आज रात को हम और आप खिड़की से छिपकर उनके दर्शन करेंगे। किन्तु वे हम शरीरधारियों से बात नहीं करते।

यह सुनकर राजा भी बहुत प्रसन्न हुआ और न मालूम कितनी उत्सुकता से वह दिन बिताया। रात्रि होते ही राजा और रानी दोनों ही खिड़की के पीछे छिपकर खड़े हो गये और आकाश की ओर देखने लगे। थोड़ी ही देर पश्चात् राजा ने गरुड़ पर सवार विष्णु भगवान् को शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये आते देखा। यह देखकर राजा ने कहा—हमसे बढ़कर भाग्यवान् संसार में कौन है, प्रिये! भला बताओ, हमारी कन्या को स्वयं भगवान् ने

स्वीकार किया है। हम लोगों की सारी कामनाएँ पूर्ण हो गईं। अब मैं अपने दामाद की शक्ति से सारे संसार पर प्रभुत्व स्थापित करूँगा।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् सम्राट् विक्रमादित्य के दूत राजा के पास वार्षिक कर लेने आये। किन्तु राजा तो अपने नये सम्बन्ध के अभिमान में फूला था। उसने उनकी तनिक भी चिन्ता न की। अधिक समय व्यतीत हो जाने के बाद दूतों ने राजा से कहा—अधिक समय बीत चुका है, अब हमें जल्दी से वार्षिक कर दिला दीजिए। आप तो हमारी ऐसी उपेक्षा कर रहे हैं मानो आपको कोई दैवी शक्ति प्राप्त हो गई है। आप नहीं जानते ऐसा करने से आप सम्राट् का अपमान कर रहे हैं। उनकी एक फुंकार मात्र से ही आपका समस्त राज्य चौपट हो जायगा।

यह सुनकर राजा ने क्रोधित होकर उन लोगों को दरबार से निकलवा दिया। वे दूत वहाँ से अत्यंत अपमानित और क्रुद्ध होकर अपने राज्य को वापस लौट गये और वहाँ जाकर उन्होंने विक्रमादित्य से खूब नमक-मिर्च लगाकर सारी घटना का वर्णन किया। यह सुनकर विक्रमादित्य ने तुरन्त ही एक बहुत बड़ी सेना लेकर भूसी राज्य पर आक्रमण कर दिया। उसकी सेनाएँ बिना किसी रुकावट के भूसी राज्य को लूटती और उजाड़ती हुई भूसी नगर की ओर चलीं। लुटे और दुर्दशाग्रस्त लोगों ने जाकर राजमहल के द्वार पर दुहाई मचाई और राजा को भी बहुत कुछ बुरा-भला कहा। किन्तु राजा ने उन सबकी चिन्ता न की।

दूसरे दिन विक्रमादित्य की सेनाओं ने भूसी नगर के कोट के चारों ओर घेरा डाल दिया। तब तो राज्य के समस्त मंत्रीगण राजा के पास पहुँचे और नाना प्रकार से उसे समझाकर कहा—राजन्! शक्तिशाली शत्रु ने आकर नगर को घेर लिया है। आप प्रजा के रक्षक होते हुए भी अब तक मौन बैठे हैं। ऐसा क्यों, राजन्! राजा ने कहा—महानुभावो, आप लोग चिन्ता त्यागकर आराम से घर बैठिए। मैंने शत्रु के नाश की युक्ति सोच ली है। आप लोग कल ही उसका फल देख लीजिएगा। इसके उपरान्त नगरकोट तथा उसके द्वारों की सुदृढ़ रक्षा का आदेश देकर उनको विदा किया।

फिर राजकुमारी माधुरी को बुलाकर कहा—प्यारी बेटी! तुम्हारे पति की शक्ति पर विश्वास करके ही मैंने इतने बड़े शत्रु से मोर्चा लिया है। आज रात्रि को दया करके मेरी ओर से अपने पति से भगवान् विष्णु से प्रार्थना करो कि कल प्रातःकाल होते ही वे शत्रु-सेना का नाश कर दें।

रात्रि में राजकुमारी ने जुलाहे से अपने पिता का संदेशा कहा। इसे सुनकर उसने हँसकर कहा—प्रिये, यह तो तनिक सी बात है। मैंने तो हिरण्यकशिपु और कंस जैसे महापराक्रमी राक्षसों का संहार किया है, फिर ये क्या हैं। चिन्ता छोड़ो। प्रातः होते ही मैं तुम्हारे पिता के शत्रु का संहार करूँगा।

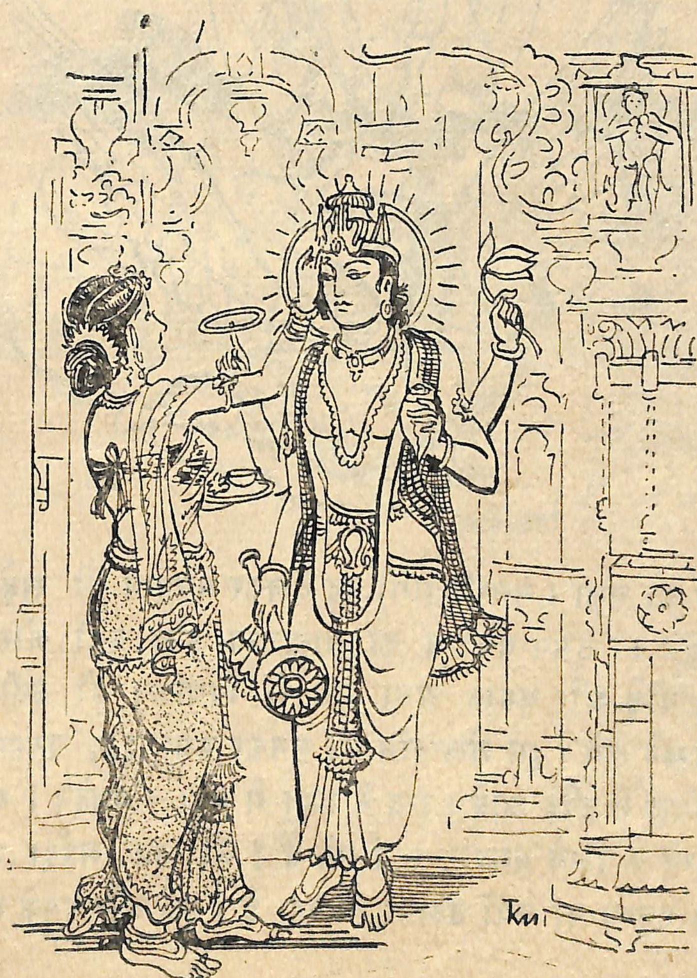
राजकुमारी ने जाकर अपने पिता से सारी बात कह सुनाई। यह सुनकर राजा खुशी से फूल गया और तुरन्त ही उसने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कल जब युद्ध में विक्रमादित्य मारा जा चुके तो मेरी प्रजा उसकी सेना में जाकर जिस वस्तु को ले लेगी, वह चाहे कितनी ही बहुमूल्य क्यों न हो, उसकी हो जायगी। ऐसा सुनकर प्रजा बड़ी प्रसन्न हुई। और लोग आपस में कहने लगे—हमारा राजा बड़ा दयालु है। ऐसे भयंकर शत्रु के द्वार पर पड़ा रहने पर भी भय नहीं खाता। अवश्य ही कल वह विजयी होगा।

इधर जुलाहा एक अजीब उलझन में पड़ गया और प्रेम की सारी बातें भूल गया। वह सोचने लगा—अब मुझे क्या करना चाहिए। यदि गरुड़ पर चढ़कर भाग जाऊँ तो राजकुमारी से कैसे भेंट करूँगा और यदि उससे भेंट न हुई तो मैं विरह में प्राण त्याग दूँगा। यदि मैं युद्ध करूँगा तो भी मारा जाऊँगा। दोनों ही तरह से मेरी मृत्यु है। तो क्यों न मैं युद्ध ही करूँ ? हो सकता है कि शत्रु-सेना मुझे गरुड़ पर सवार देखकर असली भगवान् विष्णु समझ ले और भाग खड़ी हो। क्योंकि जो प्राणों का मोह छोड़कर कार्य-सिद्धि में डट जाते हैं, वे सफल होते हैं।

तब जुलाहे ने युद्ध करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उधर स्वर्ग में स्वयं गरुड़ भगवान् विष्णु के पास पहुँचा और कहा—भगवन् ! भूसी नाम नगर में एक जुलाहे ने आपके वेश में राजकुमारी से पाणिग्रहण कर लिया है। जिसके फलस्वरूप एक अत्यंत शक्तिशाली सम्राट् ने भूसी पर आक्रमण कर दिया है। मैं आपके पास प्रार्थना लेकर आया हूँ। महाराज ! यदि सवेरे जुलाहा, जिसने आपके वेश में युद्ध करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है, मारा गया तब तो अनर्थ हो जायगा। क्योंकि सारे संसार में यही प्रसिद्ध हो जायगा कि विक्रमादित्य ने भगवान् विष्णु का वध कर डाला और इससे आपका बड़ा अपमान होगा। सारे संसार में आपके नाम पर होनेवाला पूजा-दान-धर्म समाप्त हो जायगा। नास्तिक मंदिरों का विध्वंस कर डालेंगे और जो वैष्णव आपके दर्शनों को परिक्रमा करके पुरी जाते हैं वे भी यह सब त्याग देंगे। इसलिए कुछ उपाय अवश्य कीजिए, प्रभो ! जिससे ऐसा अनर्थ होने से बच जाय।

भगवान् ने गरुड़ से कहा--पक्षिराज, तुम्हारा कहना सत्य है। इस जुलाहे में अब दैवी ज्योति की झलक पहुँच चुकी है, इसलिए अब इसके द्वारा अवश्य ही विक्रमादित्य का संहार होना चाहिए। इस बात को पूर्ण करने के लिए हमें और तुम्हें दोनों ही को उसकी सहायता करनी चाहिए। मेरी शक्ति उसमें प्रवेश करेगी और तुम्हारी शक्ति उसके गरुड़ में। फिर मेरा चक्र उसका चक्र हो जायगा। "जैसी प्रभु की आज्ञा"—गरुड़ ने कहा।

जब जुलाहे में भगवान् की शक्ति प्रवेश कर गई तो उसने राजकुमारी से कहा—भद्रे, जब मैं रण के लिये प्रस्थान करूँ, उस समय तुम मुझे रणोपयुक्त ही विदा देना। राजकुमारी



ने थाल सजाकर जुलाहे की आरती उतारी और मस्तक पर तिलक लगाकर चावल छिड़के। फिर हाथ में पान की बीड़ा देकर मुस्कराते हुए उसे विदा किया।

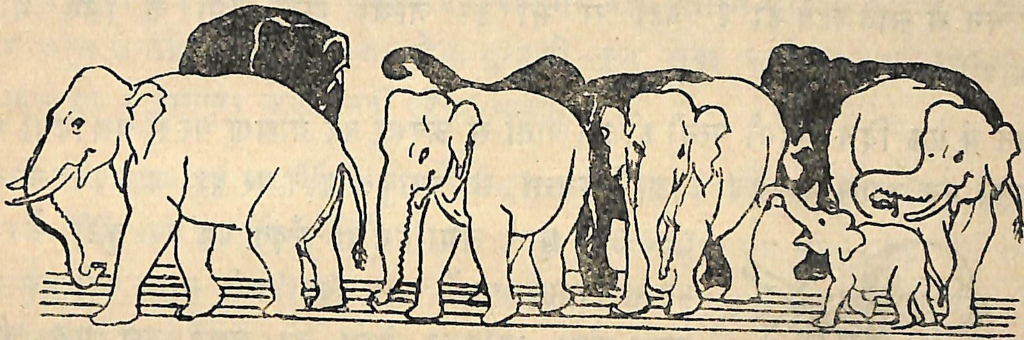
प्रातःकाल दोनों राजा अपनी अपनी सेना युद्धक्षेत्र में सजाकर खड़े हो गये। दोनों ओर युद्ध के बाजे बजने लगे तथा शंखध्वनि अंबर में गूँजने लगी। जैसे ही युद्ध आरंभ होने को था, उसी समय जुलाहा गरुड़ पर सवार होकर आकाश में उड़ गया और अगणित रत्न-कण



बरसाते हुए युद्धक्षेत्र को चला। नगरनिवासी यह देखकर मंत्रमुग्ध से खड़े रह गये। दोनों सेनाओं के ऊपर पहुँच कर उसने भगवान् का पाञ्चजन्य शंख बड़ी जोर से बजाया, जिसे सुनकर सभी हाथी, घोड़े और समस्त सेना भय से विचलित हो उठी और सब लोग आकाश की ओर देखने लगे। इस शंखध्वनि को सुनकर ब्रह्मा, इंद्र, वरुण, बृहस्पति आदि देवता भी आकाशमंडल में दौड़ आये। इन्द्र ने ब्रह्मा से कहा—ब्रह्मदेव! यह कौन सा राक्षस है जिसका संहार करने के लिये भगवान् स्वयं गये हैं? जो चक्र सर्वदा राक्षसों का संहार करता रहा वह आज मनुष्य पर क्यों उठाया जा रहा है? भक्त और उनके भगवान् की महिमा विचित्र है।

जब सारे देवतागण इस प्रकार से सोच रहे थे तभी जुलाहे ने विक्रमादित्य पर चक्र चलाया। उसका सिर काटकर चक्र फिर जुलाहे के पास लौट आया। यह देखकर सारे राजा

तथा सेनापति अपने वाहनों पर से उतर कर हाथ जोड़ सिर नवाकर बैठ गये। और प्रार्थना करते हुए बोले—हमारी रक्षा कीजिए भगवन्! हम सब आपकी शरण हैं। हमें आज्ञा दीजिए कि हम क्या करें। इस पर जुलाहे ने कहा—तथास्तु, मैं तुम लोगों को जीवनदान देता हूँ। अब से तुम लोग राजा दृढ़वर्मा की आज्ञा का पालन करना। इस बात को सबने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके बाद जुलाहे ने दृढ़वर्मा को विक्रमादित्य का राज्य तथा कोष दिला दिया।



———

पाँचवीं कथा

कृतघ्न मनुष्य

किसी नगर में वलि नामक एक अत्यंत ही गरीब ब्राह्मण रहता था। नित्य उसकी स्त्री अपनी गरीबी और पति के आलस्य से ऊबकर उसको धिक्कार कर कहती थी—ओ आलसी वज्रहृदय! अपने बच्चों को भूख से तड़पते देख क्या तुमको तनिक भी दया नहीं आती जो तुम चैन से सोते रहते हो? जहाँ से भी हो जाओ और बच्चों के लिए भोजन लेकर आओ।

अंत में एक दिन अपनी पत्नी की इन बातों से ऊबकर वह ब्राह्मण घर से चल दिया और चलते-चलते एक जंगल में पहुँचा। वहाँ प्यास से व्याकुल होने पर वह जल की खोज में इधर-उधर घूमने लगा। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह एक कुटी के पास पहुँचा जिसके चारों ओर खूब घनी घास बढ़ी हुई थी। उसने अंदर झाँककर देखा तो उसमें उसे एक चीता, एक सर्प, एक बन्दर और एक मनुष्य दिखाई पड़े। उन लोगों ने भी उसे देखा। उसे देखकर चीते ने प्रार्थना भरे स्वर में कहा—ऐ दयालु मनुष्य! कृपा करके मुझे यहाँ से निकालकर मेरी प्राणरक्षा करो और मेरा जीवन बचाने का पुण्य कमाओ। मैं भी अपने स्त्री-बच्चों से बिछुड़ गया हूँ। उनके मिलन से मेरा रोम-रोम तुम्हें आशीर्वाद देगा। ब्राह्मण ने कहा—सच बात तो यह है कि तुम्हारी दहाड़ मात्र से ही लोगों का हृदय काँप उठता है। फिर भला मैं तुम्हें निकालने का साहस कैसे कर सकता हूँ? इस पर चीते ने कहा—मैं तुम्हें त्रिवाचा (तीन बार वचन) देता हूँ कि मैं तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगा। मेरे ऊपर दया करके मुझे यहाँ से निकाल दो। ब्राह्मण ने सोचा—यदि किसी की प्राणरक्षा से विपत्ति आती है तो कभी विपत्ति भी स्वयं मुक्ति का कारण बन जाती है। ऐसा सोचकर उसने चीते को बाहर निकाल दिया।



इसके बाद बन्दर ने प्रार्थना की और ब्राह्मण ने उसको भी दयावश निकाल दिया। किंतु साँप की प्रार्थना पर ब्राह्मण ने कहा—तुम्हारी फुसकार सुनकर ही मेरा अंग-अंग सिहर उठता है। फिर भला छूने पर क्या गति होगी! साँप ने कहा—हम लोग स्वेच्छाचारी जीव नहीं। केवल कारण मिलने पर ही किसी को काटते हैं। फिर भी मैं तुम्हें त्रिवाचा देता हूँ कि मैं तुम्हें न काटूँगा। इस पर ब्राह्मण ने उसे भी निकाल दिया।

तब सब जानवरों ने ब्राह्मण से कहा—वह मनुष्य जो अन्दर पड़ा है, पापों की गठरी है। सावधान! भूलकर भी उसे न निकालना और न उस पर विश्वास ही करना। इसके बाद चीते ने कहा—बन्धु! वह ऊँची चोटियोंवाला पहाड़ देखते हो। उसी के ऊपर हरी-भरी घाटी में मेरी गुफा है। कृपा करके अवश्य एक बार मेरे यहाँ पधारने का कष्ट करना जिससे कम से कम आज के उपकार के ऋण का बोझ तुम्हारी कुछ सेवा करके हलका कर सकूँ। दूसरे जीवन तक मैं आपका ऋणी नहीं रहना चाहता हूँ।

यह कहकर वह चल दिया। इसके बाद बन्दर ने कहा—मेरा घर भी उसी गुफा के निकट झरने के किनारे है। कृपया मेरे यहाँ भी अवश्य पधारिएगा। यह कहकर वह भी चला गया। फिर सर्प ने कहा—किसी भी समय आवश्यकता पड़ने पर मुझे स्मरण कीजिएगा। इतना कह कर वह भी चला गया।

अब कुएँ के अन्दरवाले मनुष्य ने पुकार कर कहा—ब्रह्मदेव! मुझे भी कृपा करके बाहर निकालो। ब्राह्मण ने सोचा—अरे, यह भी मेरी ही तरह मनुष्य है। उसे दया आ गई। उसने उसे भी बाहर निकाल लिया। निकल आने पर उसने भी कहा—मैं सुनार हूँ और भड़ौंच में रहता हूँ। कभी यदि मेरे लायक कुछ सेवा हो तो अवश्य मेरे पास आने की कृपा कीजिएगा। इतना कहकर वह भी चला गया।

दुर्भाग्यवश अधिक समय तक भटकने पर भी ब्राह्मण को कुछ प्राप्त न हुआ। घर लौटने पर उसे बन्दर का निमन्त्रण याद आ गया और बन्दर की परीक्षा लेने वह उसके पास पहुँचा। बन्दर घर पर ही था। उसने ब्राह्मण को अमृत जैसे मीठे फल खिलाए जिससे उसकी रगों और शरीर में नई शक्ति का संचार हो गया। फिर भी बन्दर ने कहा—ब्रह्मदेव, जब कभी आपको फलों की आवश्यकता हो, आप अवश्य मेरे यहाँ पधारिएगा। ब्राह्मण ने कहा—तुमने एक सच्चे मित्र का धर्म निभाया है किन्तु कृपा करके मेरी भेंट चीते से करा दो, क्योंकि मैं उससे भी वचन-बद्ध हूँ।

बन्दर उसे चीते के पास ले गया और चीते ने भी उसे पहचानकर सोने के हार तथा

अन्य आभूषण भेंट करके कहा—एक राजकुमार अपने घोड़े के भाग जाने के कारण भटकता हुआ इधर आ पहुँचा था। उसे मारकर मैंने यह सब आपको भेंट करने के लिए यत्नपूर्वक



रख छोड़ा था। कृपया इन्हें स्वीकार कर मुझे कृतार्थ कीजिए। तब कहीं जाइए। ये सब वस्तुएँ लेकर ब्राह्मण वहाँ से आगे चला। तब उसे मार्ग में सुनार की याद आई। उसने सोचा कि सुनार इन चीजों को ठीक से बिकवा सकता है।

यह सोचकर वह सुनार के पास पहुँचा। सुनार ने भी उसकी जलपान आदि से अच्छी आव-भगत की और पूछा कि मेरे लायक कोई सेवा हो तो बताइए। ब्राह्मण ने सारे आभूषण उसे देकर कहा कि इन्हें कृपया बिकवा दीजिए। सुनार ने आभूषणों को देखकर मन में कहा—अरे! यह तो मैंने ही राजकुमार के लिए गढ़े थे। भला यह ब्राह्मण इन्हें कैसे पा गया? भला पता तो लगाना चाहिए। ऐसा सोचकर उसने ब्राह्मण से कहा—आप तब तक यहीं विश्राम करें, मैं इन्हें बाजार में दिखलाने के लिए जाता हूँ। वह वहाँ से तुरन्त राजा के पास पहुँचा और उसे वे गहने दिखाये। राजा ने पूछा कि यह तुम्हें कहाँ से मिले? सुनार ने बताया कि उसकी दूकान में एक ब्राह्मण बैठा है। जो इन्हें लाया है। राजा ने सोचा—अवश्य ही इसने राजकुमार को मार डाला है। अच्छा, मैं भी उसे दिखाऊँगा कि ऐसे कर्म का क्या फल होता है! उसने तुरन्त अपने नौकरों को ब्राह्मण को बन्दी बनाकर प्रातः होते ही फाँसी दे देने का हुक्म दिया। कुछ ही समय में ब्राह्मण बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया गया।

बन्दीगृह में ब्राह्मण को सर्प की याद आई। तुरन्त ही सर्प आ उपस्थित हुआ और पूछा कि क्या आज्ञा है? ब्राह्मण ने कहा कि किसी उपाय से मुझे यहाँ से निकालो। सर्प ने तनिक सोचकर कहा—अच्छा, मैं जाकर रानी को डसे लेता हूँ। वैद्य, तांत्रिक आदि चाहे कितने ही उपचार क्यों न करें, वे विष न उतार सकेंगे और आपके केवल छू देने से ही विष उतर जायगा। इस प्रकार आप स्वतंत्र हो जायँगे। इतना आश्वासन देकर सर्प चला गया और वचनानुसार उसने जाकर रानी को डस लिया। अब क्या था!



राजमहल में हाहाकार मच गया। राजा ने तुरन्त ही तमाम वैद्य, हकीम, झाड़-फूँक करने वाले बुलवाए पर विष न उतरा। अन्त में राजा ने डुग्गी पिटवा दी कि जो विष उतार देगा उसको भारी इनाम मिलेगा। डुग्गी सुनकर ब्राह्मण ने प्रहरियों से कहा कि मैं विष उतार सकता हूँ। यह सुनकर वे लोग ब्राह्मण को तुरन्त ही राजा के पास लेकर गये। राजा ने ब्राह्मण से रानी को अच्छा कर देने को कहा। ब्राह्मण के केवल स्पर्शमात्र से ही रानी अच्छी हो गई। राजा ने यह देखकर ब्राह्मण का बहुत ही आदर-सत्कार किया और सम्मानपूर्वक कहा—ब्रह्मदेव! कृपया हमें बताइए कि ये आभूषण आपको कहाँ से प्राप्त हुए? ब्राह्मण ने राजा को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया जिसे सुनकर राजा ने तुरन्त ही सोनार को बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया और ब्राह्मण को एक सहस्र ग्राम दक्षिणा में दिये तथा उसे अपना परामर्श-दाता बना लिया। ब्राह्मण ने अपनी पत्नी और बच्चों को वहां बुला लिया और सुखपूर्वक वहीं अपना जीवन बिताने लगा।

———

छठी कथा

मूर्ख ऊँट

बहवः पण्डिताः क्षुद्राः सर्वे मायोपजीविनः।
कुर्युः कृत्यमकृत्यं वा उष्ट्रे काकादयो यथा॥

अर्थात्—बहुत से क्षुद्र मायावी जीव अच्छा-बुरा सब कुछ कर डालते हैं। जैसा कि ऊँट के साथ कौवा आदि ने किया।

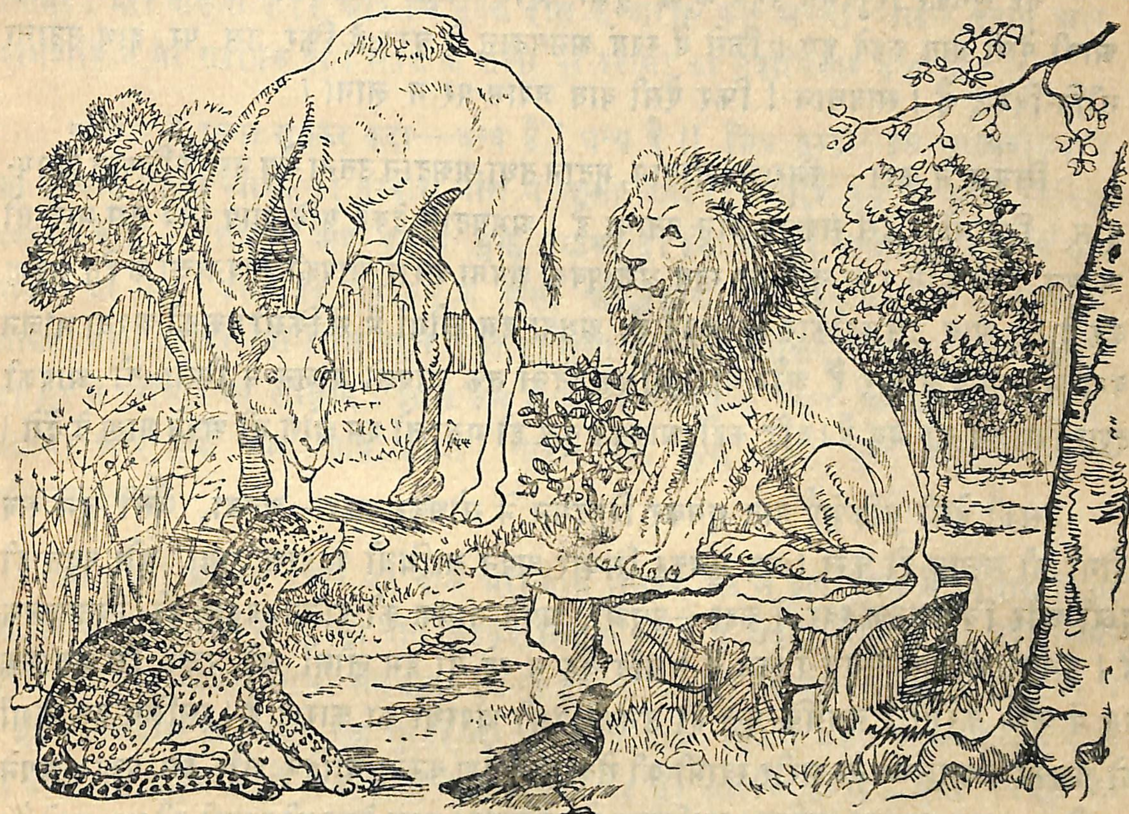
किसी नगर में सागर नामक एक व्यापारी रहता था। एक बार वह सौ ऊँटों पर बहुमूल्य कपड़ों के थान लादकर व्यापार के लिये चल दिया। मार्ग के एक सघन वन में उसका कुरूप नामक एक ऊँट अधिक बोझ न ढो सकने के कारण गिरकर घायल हो गया। उसका सारा बोझा दूसरे ऊँटों पर लाद देने के बाद भी जब सागर ने देखा कि वह चलने में असमर्थ है तो उसे उसी दशा में छोड़कर वह वहाँ से चल दिया।

सागर के चले जाने के बाद कुरूप बड़े कष्ट से किसी प्रकार खिसक कर थोड़ी घास चर लिया करता था। कुछ दिनों में वह फिर बिलकुल ठीक हो गया और उसी जंगल का निवासी बन गया।

उसी वन में रिपुदमन नामक एक शक्तिशाली सिंह अपने तीन साथियों के साथ, जिनमें एक गुलदार, सियार और कौवा थे, रहता था। एक दिन रिपुदमन ने घूमते हुए कुरूप को देखा और अपने साथियों से कहा कि पता लगाओ यह अजीब सी सूरत वाला कौन जीव है। कौवे ने पता लगाकर बताया कि वह एक ऊँट है। शेर ने कुरूप को बुलाकर उसका सारा वृत्तान्त पूछा और दयापूर्वक उसे अभयदान देकर अपने साथ रहने की अनुमति दे दी। अब वे पाँचों साथ रहने लगे।

एक दिन किसी जंगली हाथी से लड़ाई में रिपुदमन बहुत घायल हो गया। इस कारण वह चलने-फिरने से विवश हो गया। इसी प्रकार पाँच-छः दिन बीत गये और रिपुदमन के घायल पड़े रहने के कारण शेष साथियों को भोजन के लाले पड़ गये। उन

लोगों की ऐसी अवस्था देखकर रिपुदमन ने उन लोगों से कहा कि वे लोग जाकर अपने-अपने भोजन का उपाय करें। स्वयं घायल होने के कारण वह उन लोगों के भोजन का कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता था। किन्तु उन लोगों ने कहा—जब हमारा राजा ही भूखों मर रहा



है तो हम लोग कैसे अपना पेट भर सकते हैं। उनकी ऐसी प्रीति देखकर रिपुदमन बहुत प्रसन्न हुआ और कहा—अच्छा, जाकर कोई जानवर इधर फँसा लाओ। मैं इस हालत में भी तुम लोगों के लिये उसका शिकार करूँगा।

यह सुनकर चारों शिकार की खोज में चल दिये। मार्ग में सियार और कौवे ने आपस में सलाह की कि जब कुरूप मौजूद है तो व्यर्थ भटकने से क्या लाभ। क्यों न इसी को अपना भोजन बनाया जाय। दोनों ने आपस में निश्चय किया कि चलकर रिपुदमन को किसी प्रकार ऐसा करने के लिये राजी करना चाहिए।

सियार सब लोगों को वहीं छोड़कर सिंह के पास पहुँचा और जाकर कहा कि बहुत भटकने पर भी कहीं कोई शिकार नहीं मिला, सब लोग ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक कर चूर हो गये हैं।

इसके अतिरिक्त आप बीमार हैं। तब क्यों न अपने साथी कुरूप के मांस से ही आप अपनी जीवन-रक्षा करें।

यह सुनकर रिपुदमन बहुत क्रुद्ध हुआ और बोला—अरे नीच! तुझे लज्जा नहीं आती ऐसी बात कहते हुए। जिसे मैं स्वयं अभयदान दे चुका हूँ फिर उस पर हाथ उठाना नीति-विरुद्ध है। सावधान! फिर ऐसी बात जबान पर न लाना।

सियार ने कहा—वनराज! गोदान, भूदान तथा अन्नदान उतना श्रेष्ठ नहीं है जितना अभयदान। विद्वानों ने इसे सर्वश्रेष्ठ दान बताया है। अभयदान देकर यदि आप स्वयं उसे मारें तो अवश्य दोषी होंगे। पर यदि वह स्वयं श्रद्धापूर्वक अपना शरीर आपकी जीवनरक्षा के हेतु अर्पण कर दे तो आप उसे स्वीकार कर सकते हैं, अथवा हम लोगों में से किसी एक को अपना भोजन बना लें। आप बीमार हैं और यदि अधिक दिनों तक आपको भोजन न मिला तो आपकी दशा बिगड़ने का भय है। यदि कहीं आपको कुछ हो गया तो हम लोग भी अपने प्राण दे देंगे।

उसकी ऐसी युक्तिपूर्ण बात सुनकर रिपुदमन ने सोचकर कहा—अच्छा, जैसी तुम सब लोगों की सलाह हो करो। यह सुनकर सियार अपने साथियों के पास गया और बहुत ही दुखी और चिंताजनक स्वर में कहा—बंधुओ, अपने नायक की हालत बहुत ही चिंताजनक है। उनका अन्तिम समय निकट है। यदि वह न रहे तो हम लोगों की रक्षा इस भयानक वन में कौन करेगा? क्योंकि भूख ही उनकी ऐसी अवस्था का कारण है। इसलिए हम लोगों को चलकर अपना-अपना शरीर स्वामी की सेवा में अर्पण करना चाहिए और इस प्रकार अपने स्वामी का ऋण चुकाना चाहिए। स्वामिभक्त सेवक अपना प्राण देकर भी स्वामी की रक्षा करते हैं।

आपस में इस प्रकार सलाह करके चारों रिपुदमन के पास गये। रिपुदमन ने उनसे पूछा—मित्रो, कोई शिकार मिला या नहीं? कौवे ने आगे बढ़कर उत्तर दिया—स्वामी! हम लोग सारा वन छान आये पर कोई शिकार नहीं मिला। मेरा शरीर आपकी सेवा में अर्पित है। कृपया इसे स्वीकार कर मुझे स्वर्ग का भागी बनाएँ और कम से कम एक दिन के लिए अपनी प्राण-रक्षा करें। स्वामी की सेवा में प्राण-त्याग करने से स्वर्गप्राप्ति होती है।

कौवे की प्रार्थना सुनकर सियार ने कौवे से कहा—मित्र, तुम्हारा शरीर अत्यन्त छोटा होने के कारण स्वामी के लिए अपर्याप्त है। इसके अतिरिक्त ऐसा करने में एक धार्मिक बन्धन भी है।

काग का मांस खाना शास्त्र में निषिद्ध है।

तुमने अपनी स्वामिभक्ति का बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया और इस प्रकार दोनों लोकों में सहानुभूति प्राप्त कर ली। अब कृपया मुझे भी स्वामी की सेवा में कुछ प्रार्थना करने का अवसर दो। फिर सियार ने सिंह के सामने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सिर झुकाकर कहा—स्वामी! मेरी प्रार्थना है कि आप इस तुच्छ दास के शरीर को अपना आहार बनाएँ और स्वर्गप्राप्ति में मेरे सहायक हों। सेवक के शरीर पर स्वामी का सर्वाधिकार होता है।

गुलदार ने इतना सुनकर कहा—धन्य है! धन्य है!! मित्र तुम्हारे इस आत्मबलिदान को धन्य है। किंतु स्वामी को तुम्हारा मांस न खाना चाहिए। क्योंकि तुम भी उन्हीं निषिद्ध वस्तुओं में हो। इसलिए अब कृपया मुझे अवसर दो कि मैं भी स्वामी की सेवा में कुछ प्रार्थना कर सकूँ। उसने तब रिपुदमन के आगे आदरपूर्वक सिर झुकाकर कहा—महाराज, आपकी दशा देखकर मेरा चित्त बहुत दुखी हो गया है, आप इसलिए अवश्य ही मेरे शरीर को भेंट में स्वीकार कर लीजिए। इससे कम से कम एक दिन के लिए आपकी प्राणरक्षा हो जायगी और मुझे स्वर्ग प्राप्त होगा। अतः आप कृपा करके मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकार कर लें।

इन लोगों की इस प्रकार की चाल भरी बातें सुनकर ऊँट ने अपने मन में विचार किया कि सब लोगों ने चिकनी-चुपड़ी बातें कहकर सिंह के हृदय में अपना सम्मान भी बढ़ा लिया और उसने इन्हें अपना साथी समझकर इनकी प्रार्थना को भी स्वीकार न किया, तो क्यों न मैं भी इस अवसर के उपयुक्त एक सुन्दर सा भाषण दे डालूँ। जिस प्रकार ये लोग एक दूसरे की बातों को काटते रहे हैं अवश्य ही मेरी प्रार्थना पर भी आपत्ति करेंगे। ऐसा विचार कर उसने गुलदार से कहा—बहुत सुन्दर, तुम धन्य हो मित्र गुलदार! किन्तु तुम्हारा मांस भी निषिद्ध वस्तुओं में है। इसलिए कृपया मुझे अपने शरीर को स्वामी की सेवा में अर्पण करने का अवसर दो। फिर उसने भी सिंह से कहा—वनराज! अवश्य आप इन लोगों का मांस न खाकर मेरे इस तुच्छ शरीर को अपने आहार के लिए स्वीकार करें और मुझे इस दैवी प्रशंसा और सम्मान का भागी बनाएँ।

भूख से व्याकुल सिंह, सियार आदि की चालाकी न समझ सका। जब उसने देखा कि ऊँट स्वयं ही उसे अपना शरीर भेंट कर रहा है तो उसने आज्ञा दे दी और गुलदार तथा सियार ने उस मूर्ख ऊँट के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। कौवे ने उसकी आँखें निकाल लीं।

बिना बिचारे ही दूसरों की नक़ल करने की मूर्खता में मूर्ख ऊँट ने अपने प्राण गँवा दिये।

सातवीं कथा

टिटिहरी

किसी देश में टिटिहरी और टिटिहरे का एक जोड़ा सागर के किनारे रहता था। नर का नाम था चौपटानन्द और मादा का नित्या। जब नित्या के बच्चे देने का अवसर आया तो उसने अपने पति से कहा---चलो, किसी अन्य स्थान पर चलकर बसेरा करें जहाँ अंडों को कोई भय न हो। यहाँ भयानक सागर की लहरें कभी हमारे बच्चों को बहा ले जा सकती हैं। चौपटानन्द ने कहा—अरे वाह ! इतनी सी बात के लिए हम अपने पुरुखों का घर कैसे छोड़ सकते हैं। तुम किसी भी बात की चिंता न करो और अपने अंडे यहीं रक्खो। यहाँ रहने में ही हमारा लाभ और कल्याण है। नित्या ने अपने पति को समझाने के लिए अनेक बातें कहीं किंतु वह बोला—भला ऐसा कैसे हो सकता है कि सागर, जो मेरा पुराना मित्र है, मेरे बच्चे उठा ले जाय। फिर भी ऐसा यदि वह करेगा तो कोई मैं उससे दुर्बल तो हूँ नहीं। कौन अपना नाश करने के लिए मुझसे विरोध करेगा ?

उसकी ऐसी बातें सुनकर नित्या खिलखिलाकर हँस पड़ी क्योंकि वह चौपटानन्द की शक्ति से भली भाँति परिचित थी। उसने उसे बहुत समझाया और कहा—अरे मूर्खराज ! क्यों ऐसी बातें करते हो। जो भी सुनेगा तुम्हारी हँसी उड़ाएगा। कहाँ राजा भोज और कहाँ भोजवा तेली ? तुम्हें स्वयं ही अपनी शक्ति का आभास कैसे हो गया ? अपनी शक्ति को समझ-बूझकर तथा परिणाम का ध्यान रखकर कोई कार्य आरम्भ करना चाहिए। फिर भी चौपटानन्द ने न माना और नित्या को वहीं अंडे रखने को विवश किया। उसने भी विवश होकर वहीं अंडे रक्खे।

सागर ने बड़े ध्यानपूर्वक चौपटानन्द की डींग भरी बातें सुनी थीं। अतः उसकी शक्ति की परीक्षा लेने के लिए एक दिन दोनों की अनुपस्थिति में उसने उनके अंडे अपनी लहरों द्वारा मँगवाकर उन्हें अपने विशाल वक्ष में छिपा लिया। नित्या ने लौटकर जब अंडों को गायब देखा तो बड़ी दुखी हुई और चौपटानन्द को उसकी हठ के लिए धिकारने लगी। देखो, मैंने पहले ही कहा था किंतु तुमने न माना। अब मैं आग में जलकर अपने प्राण त्याग दूँगी।

चौपटानन्द ने कहा—भद्रे! कम से कम तुम एक बार मेरी शक्ति की परीक्षा तो कर लो। मैं तब तक दम नहीं ले सकता जब तक इस नीच सागर को इसकी धूर्तता का दंड न दे लूँ।

नित्या बोली—क्या तुम सागर से लड़ सकते हो? है तुममें इतनी शक्ति? जो निर्बल अभिमानवश शत्रु से लड़ते हैं वह पतिंगे की तरह नष्ट हो जाते हैं।

"कम से कम तुम तो ऐसा न कहो। मैं अपनी चोंच से सागर का एक बूँद जल पीकर सुखा दूँगा।"

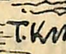
"किन्तु तुम अपनी इस छोटी सी चोंच से, जिसमें केवल एक बूँद पानी आता है, इतना बड़ा सागर कैसे सुखा सकते हो? क्यों मूर्खतापूर्ण बातें करते हो?"

पर चौपटानन्द ने कहा—दृढ़ विचार पर आरूढ़ रहने से सफलता मिलती है।

नित्या ने कहा—यदि तुमको अपने दृढ़ विचार और शक्ति पर इतना विश्वास है तो कम से कम अपने अन्य मित्रों को तो अपनी सहायता के लिए बुला लो—इस बात पर चौपटानन्द सहमत हो गया और उसने जाकर अपने अन्य साथियों से अपनी विपत्ति कह सुनाई। सबको उसकी कथा सुनकर बहुत क्रोध आया और तुरन्त ही वे उसकी मदद के लिए तैयार हो गये। एक ने तो यहाँ तक राय दे दी कि सागर को कंकड़ों और मिट्टी भर-भर कर पाट दिया जाय। पर उनमें से एक ने कहा कि सागर से ऐसे पार पाना असम्भव है। अच्छा तो यह होगा कि हम लोग पहले अपने एक मित्र राजहंस के पास चलें। वह अत्यंत बुद्धिमान् है और अवश्य ही हमको कोई सुन्दर युक्ति बतायेगा।

सारे पक्षियों ने उसकी बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया और सबके सब उसके पास जा पहुँचे। इन लोगों की बात सुनकर उसने इन्हें पक्षिराज गरुड़ के पास जाने की सम्मति दी और कहा कि वे पक्षियों के राजा हैं। यदि वे तुम लोगों की व्यथा सुनेंगे तो अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगे। अब सारे पक्षिगण गरुड़ के पास पहुँचे और उन्हें अपनी कथा सुनाई और कहा—महाराज, आप तो आनन्द से रहते हैं और हम आपकी प्रजा अपनी इन छोटी-छोटी चोंचों से मेहनत करके अपना पेट भरते हैं। इसीलिए सम्भवतः हमें अशक्त जानकर सागर का इतना साहस हो गया कि हम लोगों को व्यर्थ में ही दुख देने लगा।

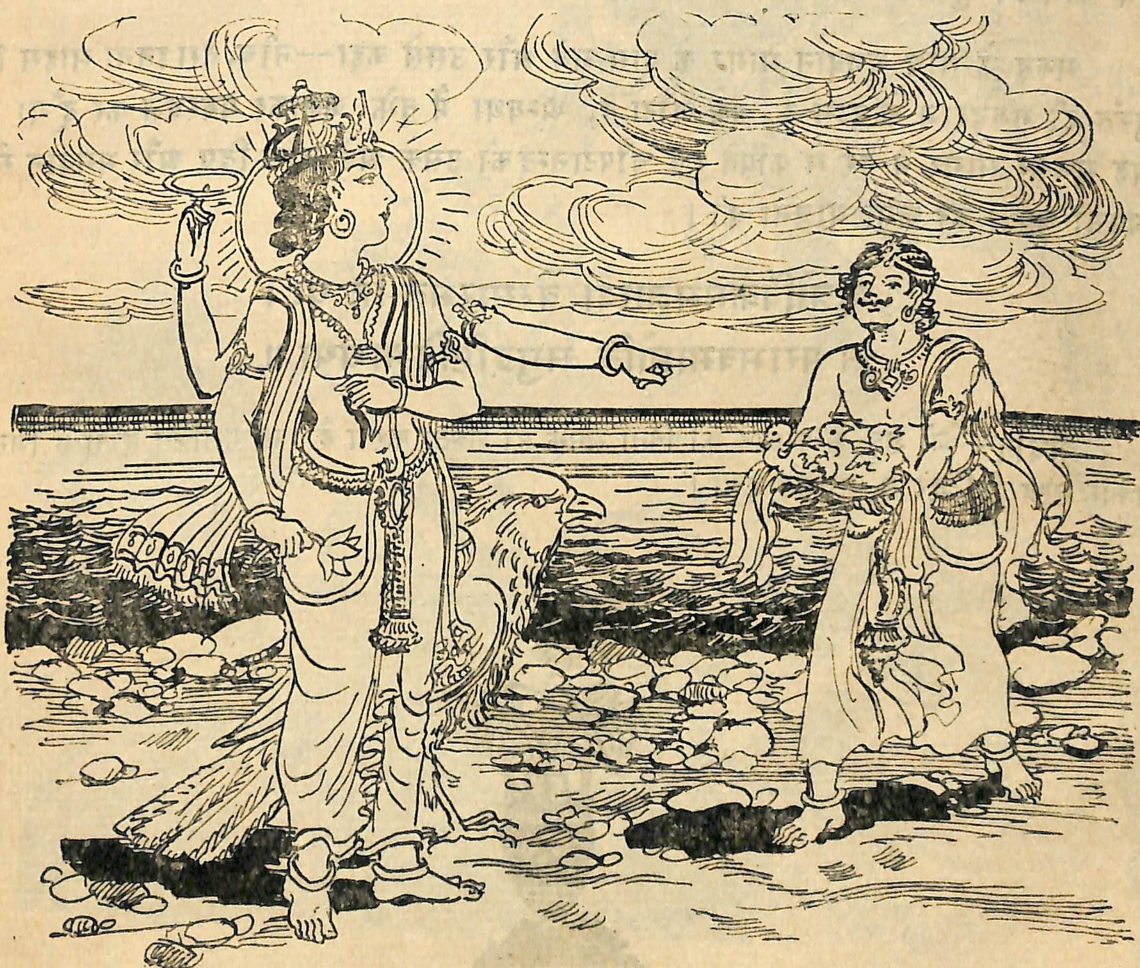
उनकी व्यथा सुनकर गरुड़ भी चिंतित हो गया। इसी बीच में भाग्यवश भगवान् विष्णु का दूत भगवान् की आज्ञा से किसी सुरासुर-संग्राम में भाग लेने के लिए गरुड़ को



गरुड़, पच्छिगण और विष्णु भगवान् का दूत

बुलाने आ पहुँचा। इन लोगों की विपत्ति की बात सुनकर गरुड़ क्रोध में भरा बैठा ही था। दूत से कह दिया—मुझ-से तुच्छ दास की भगवान् को क्या आवश्यकता है ? दूत ने गरुड़ को रुष्ट जानकर उसे समझाया कि उसे भगवान् से नाराज न होना चाहिए। इस पर गरुड़ ने कहा—भगवान् का निवास-स्थान होने के कारण सागर ने घमंड में आकर मेरे एक दास को अत्यन्त ही कष्ट पहुँचाया है। यदि मैं सागर को इसका दंड न दे सका तो मैं भगवान् का दास कैसा। जाओ, तुम इसी प्रकार भगवान् से निवेदन कर दो।

भगवान् ने जब सुना कि पक्षिराज क्रोध में भरे बैठे हैं तो स्वयं ही उन्हें मनाने के लिए चल दिए। भगवान् भक्तों के भक्त हैं, उनसे भक्त का दुख देखा नहीं जाता।



गरुड़ ने जब भगवान् को स्वयं अपने यहाँ आते देखा तो वह हड़बड़ाकर खड़ा हो गया और सिर झुका हाथ जोड़कर बोला—प्रभो ! सागर आपसे बल पाकर अत्यन्त ही धृष्ट हो

गया है और अपने बल के घमंड में चूर होकर उसने मेरे दास के बच्चे चुरा लिये। इस कारण मुझे आज इन लोगों के सामने लज्जित होना पड़ा। केवल आप ही के कारण मैं अब तक मौन रहा किन्तु यदि आप कुछ सहायता नहीं करेंगे तो मैं उस नीच सागर को अवश्य ही मरुस्थल में बदल दूँगा। इतना घोर अपमान सहकर और आपका दास कहलाकर मैं आपकी कीर्ति को बट्टा लगाना नहीं चाहता।

भगवान् ने गरुड़ की बात सुनकर मुस्कराते हुए कहा—ठीक कहते हो पक्षिराज, चलो मैं भी चलता हूँ और उस धृष्ट सागर से तुम्हारे दास के बच्चे वापस दिलाता हूँ। उसके बाद हम लोग विष्णुलोक चलेंगे क्योंकि हमें देवताओं की सहायता भी करनी है।

गरुड़ के साथ भगवान् सागर के पास गये और उससे कहा--नीच, तेरा इतना साहस ! तुरंत ही गरुड़राज के दास के बच्चे लौटा दे, अन्यथा मैं तुझे जलाकर मरुस्थल कर दूँगा। यह सुनकर सागर ने डर से काँपते हुए चौपटानन्द को उसके अंडे लौटा दिए और भगवान् से अपनी धृष्टता की क्षमा याचना की।

शत्रोर्विक्रममज्ञात्वा वैरमारभते हि यः।
स पराभवमाप्नोति समुद्रष्टिट्टिभाद्यथा॥

अर्थात्—जो शत्रु के पराक्रम को बिना समझे ही शत्रुता करता है वह पराजित होता है जिस प्रकार समुद्र टिटिहरे से पराजित हुआ।



आठवीं कथा

गरगौटा और गज की लड़ाई

वन के सघन भाग में एक तमाल वृक्ष पर अपना घोंसला बनाकर एक गरगौटा और गरगौटी रहते थे। कुछ समय उपरांत गरगौटी ने अंडे दिये।



एक दिन किसी जंगली हाथी ने अपनी मस्ती में उस तमाल वृक्ष की उस डाल को, जिस पर घोंसले में गरगौटी ने अपने अंडे रक्खे थे, अपनी सूँड़ से पकड़ कर घसीट लिया।

गरगौटी के सब अंडे भूमि पर गिरकर चकनाचूर हो गये। गरगौटी को इससे बहुत दुख हुआ तथा वह दुख से फूटफूट कर रोने लगी। गरगौटी का करुण क्रन्दन सुनकर उसका मित्र कुक्कुट उसके पास आया और सारा हाल सुनकर उसे सान्त्वना देने लगा। उसने कहा—बुद्धिमान् कभी व्यर्थ की चिन्ता नहीं करते। संसार में मरना-जीना नित्य का खेल है, यहाँ कोई अमर नहीं है।

गरगौटी ने कहा—ठीक है। किंतु इस हाथी ने (ईश्वर उसकी मस्ती पर वज्रपात करे!) मेरे बच्चों को मारा है। इसलिए सखे कोई ऐसी युक्ति निकालो जिससे इसे मारकर मैं अपने बच्चों का बदला ले लूँ। यदि ऐसा हो जाय तो मेरी आत्मा को शांति मिलेगी।

कुक्कुट ने कहा—अवश्य, अवश्य। विपत्ति में जो काम आता है वही वास्तव में मित्र होता है। अच्छा, तो अब तुम मेरी बुद्धि का चमत्कार देखो। किंतु इससे पहले मैं अपने मच्छर मित्र वीणाधुन को बुला लाऊँ। फिर मैं चुटकी बजाते हुए दुष्ट हाथी को मार डालूँगा। यह कहकर वह वीणाधुन के पास गया और उसे गरगौटी की कथा सुनाकर उससे सहायता माँगी। वीणाधुन ने कहा कि पहले चलकर मेरे मेढक मित्र मेघदूत से अवश्य सलाह कर लो क्योंकि वह बहुत ही बुद्धिमान् है।

तीनों मेघदूत के पास पहुँचे और उसे जाकर सारा हाल सुनाया। उसने कहा—अरे! यह हाथी है ही कौन बड़ी चीज जो हम लोगों के क्रोध के आगे ठहरेगा। वीणाधुन, तुम जाकर उसके कान में भुनभुनाना जिससे वह तुम्हारे गायन सुनने की मस्ती में आकर अपनी आँखें बंद कर लेगा। मित्र कुक्कुट, तब तुम उसकी आँखें फोड़ देना। इसके बाद मैं इस गड्ढे के किनारे बैठकर टर्टर करूँगा। वह प्यासा होकर मेरी आवाज के पीछे पानी की खोज में आवेगा और आकर इस गड्ढे में गिरकर अपने प्राणों से हाथ धोवेगा।

सबने मेघदूत की सलाह के अनुसार कार्य किया। हाथी ने जैसे ही वीणाधुन की मीठी गुनगुनाहट सुनी उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। आँखें बंद होते ही कुक्कुट ने उसकी दोनों आँखें फोड़ दीं। अंधा हाथी मेघदूत की आवाज सुनकर उधर ही चल पड़ा। गड्ढा न देख पाने के कारण वह उसमें गिर पड़ा और मर गया।

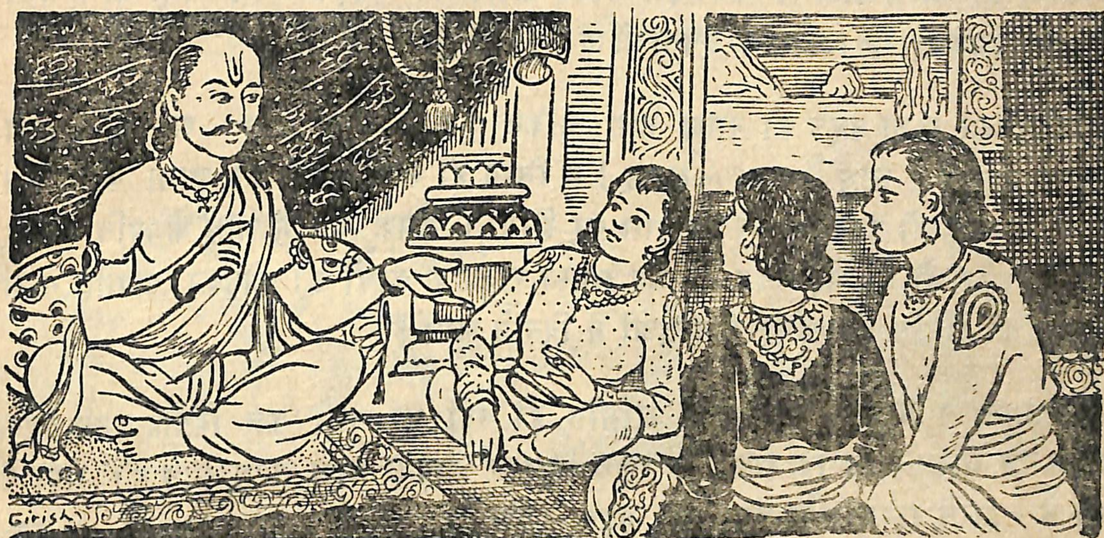
चटका काष्ठकूटेन मक्षिका दर्दुरैस्तथा।
महाजनविरोधेन कुञ्जरः प्रलयं गतः॥

अर्थात्—बड़े लोगों (अधिक लोगों) के साथ विरोध करके किसी का कल्याण नहीं होता। जैसे चटका कठफोड़वा, मच्छर तथा मेढकों के साथ विरोध करने से हाथी मारा गया।

———

नवीं कथा

कपटी साधु



कौशल देश के अजयनगर नामक राज्य में सुरथ नामक राजा राज्य करता था। उसके ऐश्वर्य और प्रताप की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। उसके पास इतना धन था कि उसके सिंहासन में लगी हुई बहुमूल्य रत्न मणियों की कांति दूर ही से इसका परिचय देती थी।

एक दिन उसके वनरक्षक ने आकर सूचना दी कि वन के समस्त शासक विंध्यक के नेतृत्व में संगठित होकर विद्रोही हो गये हैं। उसने तुरंत ही अपने सेनापति वज्र को विद्रोह-दमन करने के लिए भेजा।

सेनापति की अनुपस्थिति में ग्रीष्म ऋतु में नगर में एक नागा साधु आया। वह ग्रह-फल आदि के विचारने में बहुत निपुण था। उसने नगर में आकर कुछ ही दिनों में महान् ख्याति प्राप्त कर ली और नगर-निवासियों को अपनी चतुरता से अपना दास बना लिया। उसकी चर्चा सुनकर राजा ने भी साधु को अपने महल में बुलाया और उससे पूछा—आचार्य, क्या यह सत्य है कि आप अपनी शक्ति से दूसरों के मन की बात जान लेते हैं ? साधु ने

कहा—राजन्! यह तो बहुत ही साधारण बात है। मैं आपको यह अभी दिखा सकता हूँ। इसी प्रकार की अन्य बहुत सी अद्भुत बातें कहकर उसने राजा की उत्सुकता को और भी बढ़ा दिया।

एक दिन साधु अपने नित्य के नियत समय पर राजमहल में उपस्थित न हो सका। दूसरे दिन जब वह राजा से मिला तो बोला—राजन्! मैं तुम्हारे लिए एक अत्यंत ही शुभ संदेश लाया हूँ। आज प्रातः मैं अपने इस नश्वर शरीर को छोड़कर स्वर्ग गया था। अभी वहीं से चला आ रहा हूँ। स्वर्ग के देवताओं ने आपकी कुशल पूछी है।

यह सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न तथा चकित हुआ। उसने पूछा—आचार्य! क्या आप स्वर्ग जाते हैं? साधु ने कहा—राजन्! मैं नित्य ही स्वर्ग-भ्रमण को जाया करता हूँ। मूर्ख राजा ने साधु की इस बात पर विश्वास कर लिया। उसके मन में साधु के प्रति आदर की भावना और भी बढ़ गई। वह भी अब समस्त राज्य के कार्यों को छोड़कर अपना सारा समय साधु की संगति में इन्हीं सब चर्चाओं में बिताने लगा।

जब राज्य में आचार्य का इतना सम्मान हो रहा था तभी वज्र विद्रोह-दमन करके लौटा। उसने जाकर देखा कि राजा सब कुछ भूलकर अपना सारा समय साधु की सेवा में बिताता है। इससे राज्य और प्रजा की बहुत हानि हो रही है। वह राज्य के इस कष्ट-निवारण का उपाय सोचता हुआ राजा की सेवा में उपस्थित हुआ। राजा का यथोचित सम्मान और अभिवादन करने के उपरान्त उसने विद्रोह-शान्ति का शुभ संदेश राजा को सुनाकर बधाई दी तथा भगवान् से राजा को सुबुद्धि देने की प्रार्थना की। कुशलक्षेम के पश्चात् राजा ने आचार्य की ओर संकेत करके सेनापति से पूछा--क्या आप आचार्य को जानते हैं? सेनापति ने कहा—राजन्! भला ऐसे जगत्विख्यात विद्वान् महात्मा को कौन नहीं जानता? मैंने तो यहाँ तक सुना है कि आचार्य नित्य ही स्वर्ग की यात्रा किया करते हैं? क्या यह सत्य है राजन्?

राजा ने कहा—जो कुछ तुमने सुना अक्षरशः सत्य है। इस पर आचार्य ने कहा--यदि सेनापति को संदेह तथा उत्सुकता हो तो वह स्वयं अपनी आँखों से देख सकते हैं। यह कहकर वह अपने बनवाए हुए कोष्ठ (घर) में चला गया और अंदर जाकर उसने द्वार बंद कर लिया। कुछ समय पश्चात् सेनापति ने राजा से पूछा कि आचार्य कितनी देर में बाहर लौटेंगे? राजा ने कहा—इतनी अधीरता क्यों? तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि वे कोष्ठ

में अपना शरीर छोड़कर एक दैवी शरीर धारण कर लौटते हैं। सेनापति ने कहा—यदि ऐसा है तो जल्दी से काफी ईंधन मँगवाइए जिससे मैं इस कोष्ठ को जलाकर राख कर दूँ। राजा ने इसका कारण पूछा। इस पर उसने कहा—महाराज! जब यह नश्वर शरीर जल जायेगा तब साधु दैवी शरीर में ही प्रगट होगा जिससे हमें, आपको और सभी को उस शरीर के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

इतना कहकर सेनापति ने बहुत सा ईंधन मँगवाकर कोष्ठ को जलवा दिया जिसके साथ ही वह कपटी साधु भी जलकर भस्म हो गया और राज्य तथा प्रजा की रक्षा हो गई।



दसवीं कथा

लौहदंड खानेवाले चूहे की कथा

तुलां लौह सहस्रस्य यत्र खादन्ति मूषिकाः।
राजन् तत्र हरेच्छ्येनो बालकं नात्र संशयः॥

अर्थात्--जहाँ हजार पल लोहे की तराजू को चूहे खा जाते हैं वहाँ यदि बच्चे को बाज उठा ले जाय तो कोई सन्देह नहीं।

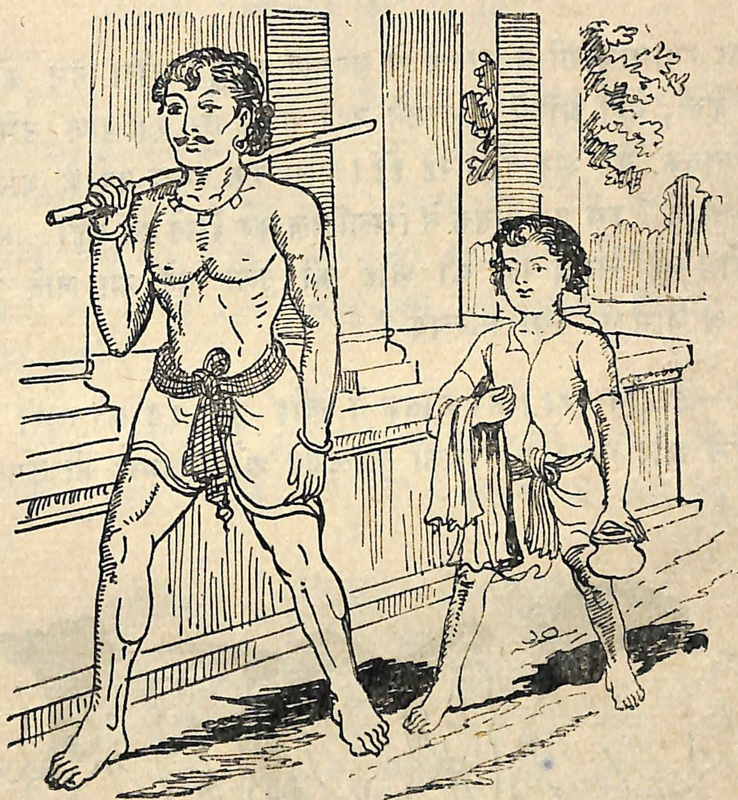
एक नगर में नातक नामी व्यापारी रहता था। धनहीन हो जाने के कारण उसने देश-भ्रमण करने का निश्चय किया। जिस स्थान पर कोई आदरपूर्वक निवास कर चुका हो वहाँ अपमानित होकर रहने से मरना ही अच्छा है। क्योंकि पड़ोसियों के ताने से हृदय भग्न हो जाता है।

उसके घर में पूर्वजों के समय का एक लौह तुलादंड था, जो तौल में एक सहस्र पल (लगभग तीन मन साढ़े पाँच सेर) के बराबर था। इस तुलादंड को उसने विदेश-यात्रा से पहले लक्ष्मण नामक दूसरे वणिक के यहाँ बंधक रख दिया।

अधिक समय तक विदेशों में, जहाँ-जहाँ उसे कार्यवश जाना पड़ा, घूमकर वह अपने नगर लौट आया। आकर वह लक्ष्मण वणिक के यहाँ गया और उसने अपनी धरोहर लौह तुलादंड वापस माँगी।

लक्ष्मण वणिक ने कहा— मित्र नातक! तुलादंड को तो चूहों ने खा डाला। इस पर नातक ने उत्तर दिया—लक्ष्मण! यदि उसको चूहों ने खा डाला तो इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। यह जीवन ही क्षणभंगुर है। सृष्टि में कोई भी वस्तु स्थायी नहीं। अब मैं नदी में स्नान करने जा रहा हूँ। कृपा करके अपने पुत्र धनदेव को मेरे स्नान का सामान मेरे साथ नदी तक पहुँचाने के लिए भेज दो।

अपनी चोरी के कारण लक्ष्मण मन-ही-मन लज्जित तथा भयभीत हो रहा था। इसी कारण उसने झट अपने पुत्र को बुलाकर कहा––बेटा धनदेव! आओ तुम्हारा परिचय नातक चाचा से करा दूँ। ये नदी नहाने जा रहे हैं। तुम इनके स्नान का सामान लेकर नदी तक इनके साथ चले जाओ।



लक्ष्मण का पुत्र स्नान की वस्तु लेकर प्रसन्नतापूर्वक नातक के साथ चल दिया। स्नानोपरांत लौटते समय नातक ने धनदेव को एक निकटवर्ती गुफा में ढकेलकर बंद कर दिया और गुफा के मुहाने पर एक बड़ा सा पत्थर रख दिया। फिर वह लक्ष्मण के घर लौट आया।

घर पर जब लक्ष्मण ने धनदेव के बारे में पूछा तो नातक ने कहा कि उसे तो नदी के किनारे एक बाज (पक्षी) उड़ा ले गया।

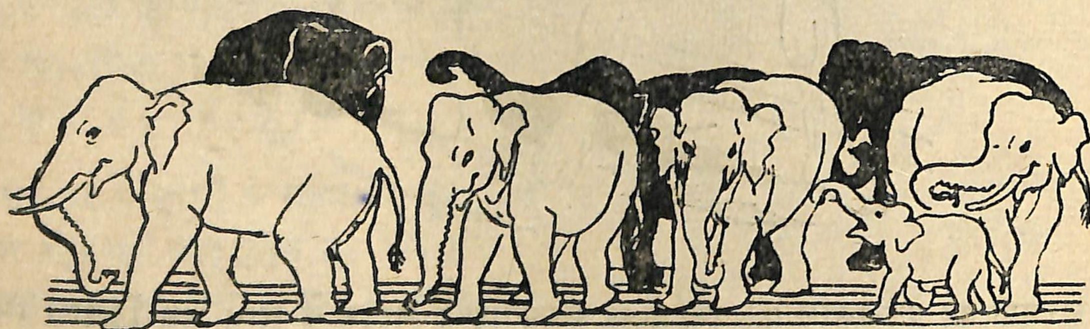
लक्ष्मण ने क्रुद्ध होकर गरजकर कहा—तुम झूठे हो। भला धनदेव, इतने बड़े बालक को बाज कैसे उठा ले जा सकता है!

किंतु लक्ष्मण, यदि चूहा लौह तुला-दंड खा सकता है तो ऐसा भी हो सकता है। यदि तुम अपना पुत्र वापस चाहते हो तो मेरा तुलादंड लौटा दो, नातक ने कहा।

अंत में दोनों अपना झगड़ा लेकर राजा के द्वार पर पहुँच गये। वहाँ लक्ष्मण ने दुहाई देकर चिल्लाते हुए कहा—सहायता कीजिये! सहायता कीजिये!! अनर्थ हो गया!!! इस नातक ने मेरे पुत्र धनदेव को चुरा लिया।

यह सुनकर न्यायाधीशों ने नातक से लक्ष्मण का पुत्र लौटा देने को कहा। नातक ने कहा—मैं क्या करूँ, मेरी आँखों के सामने नदी के किनारे एक बाज उसे उड़ा ले गया। उन्होंने कहा—नातक, तुम झूठ बोल रहे हो। भला एक पन्द्रह वर्ष के बालक को बाज कैसे उड़ा ले जा सकता है? इस पर नातक ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा—महानुभावो! तनिक ध्यान देकर सुनो। जहाँ सहस्र पल की लोहे की तुला चूहे खा जाते हैं, यदि वहाँ बाज बालक को उठा ले जाय तो क्या आश्चर्य?

यह कैसे?—उन्होंने पूछा। तब नातक ने लौह तुला-दंड की सारी कथा बताई। इस पर वे भी खूब हँसे और नातक को उसका तुलादण्ड और लक्ष्मण को उसका पुत्र एक दूसरे से दिलवा दिया।



———

ग्यारहवीं कथा

शिक्षा का फल

एक पर्वत के शिखर पर एक शुकी ने दो बच्चों को जन्म दिया। एक दिवस माँ जब इनको छोड़कर चारे की खोज में गई हुई थी, एक बहेलिए ने आकर इनको पकड़ लिया। इनमें से एक तो भाग्यवश बचकर निकल गया। किन्तु दूसरे को उसने पकड़ कर पिंजड़े में बन्द करके पाल लिया और उसे बोलना सिखाना आरम्भ कर दिया। इसी बीच में दूसरा बच्चा भी एक साधु के हाथ में पड़ गया। साधु उसे अपने आश्रम ले गया और दया तथा यत्नपूर्वक उसे पालने लगा।

इसी प्रकार समय बीतता जा रहा था। एक दिन एक राजा, जो अपने अश्व के भड़क कर भाग आने के कारण अपने अंगरक्षकों से बिछुड़ गया था, वन के उस भाग में



आ पहुँचा जहाँ बहेलिए रहते थे। शुक ने जैसे ही राजा को आते देखा वह चिल्लाने लगा—दौड़ो, मेरे स्वामियो दौड़ो। कोई अश्वारोही आ रहा है। उसे बाँध लो, उसे बाँध लो।

उसे मार डालो, उसे मार डालो। शुक के शब्दों को सुनते ही राजा ने अपने अश्व को एड़ लगाई और दूसरी दिशा में चल दिया।

इस बार चलते-चलते राजा दूसरे वन में पहुँचा। वहाँ उसने एक साधु का आश्रम तथा उसके अन्दर पिंजड़े में बन्द एक शुक को देखा। उसने राजा को संबोधन कर कहा—पधारिए राजन्! विश्राम कीजिए। हमारे आश्रम के शीतल जल तथा कन्दमूलों का स्वाद लीजिए। आइए, साधुगण राजा का सत्कार कीजिए। इन्हें इस वृक्ष की शीतल छाया के नीचे चरण धोने को जल दीजिए।

जब राजा ने यह सुना तो विस्मय से उसके नेत्र खुले रह गये। वह आश्चर्यान्वित होकर मन-ही-मन इन बातों पर विचार करने लगा। फिर शुक से कहा—वन के दूसरे भाग में मैं एक दूसरे शुक से मिला था जो बिलकुल तुम्हारी ही तरह का था किन्तु वह स्वभाव का क्रूर था। "उसे बाँध लो, उसे बाँध लो। उसे मार डालो, उसे मार डालो" वह चिल्लाया।

तोते ने राजा को अपना जीवन-वृत्तान्त सुनाया। सच है, अच्छी या बुरी जैसी संगत में कोई रहता है, उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। बहेलियों की संगत में रहने वाला पहला तोता बहेलियों की सी बातें करता था और साधुओं के आश्रम में रहने वाला दूसरा तोता साधुओं की जैसी।



बारहवीं कथा

बुद्धिमान् शत्रु

किसी समय एक राजकुमार ने एक वणिकपुत्र तथा एक विद्वान् के पुत्र से मैत्री कर ली। तीनों नित्य ही नाना प्रकार से कभी नगर में, कभी उपवनों में अपना समय व्यतीत किया करते थे। दिन-प्रतिदिन राजकुमार का मन धनुषविद्या, न्याय, हाथी और घोड़े आदि की सवारी तथा आखेट से हटता जाता था। यहाँ तक हुआ कि उसके पिता ने उसे एक दिन बहुत धिकारा और पूछा कि वह राज-कार्यों में क्यों अयोग्य होता जा रहा है? यह सुनकर राजकुमार के हृदय में बड़ी चोट लगी। अपना दुख उसने मित्रों से कहा।

दोनों ने कहा—हमारे पिता भी नित्य ऐसी व्यर्थ की बातें हमसे कहते हैं, क्योंकि हम लोग उनके कार्यों में अनुराग अथवा उत्साह नहीं दिखाते। तुम्हारी मित्रता के आनन्द के कारण हम लोगों ने पिछले दिनों इस ओर ध्यान नहीं दिया किन्तु आज तुम्हें दुखी देखकर हमें भी बड़ा दुख हुआ है।

इस पर राजकुमार ने कहा—इतना अपमानित होकर यहाँ रहना असंभव है। हम तीनों एक ही दुख से पीड़ित हैं। आओ, तीनों कहीं और चलें। स्वाभिमानी की परीक्षा विदेश-भ्रमण में ही होती है।

यह निश्चय करके फिर वे सोचने लगे, कहाँ जाने से लाभ होगा। वणिकपुत्र ने कहा—यह तो जानते ही हो कि धन के बिना कोई भी इच्छा पूरी नहीं होती। हमें विनाक पर्वत पर चलना चाहिए जहाँ हमें अमूल्य रत्न प्राप्त हो सकते हैं। हम लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार आनंद भोग सकते हैं। इस बात को सबने स्वीकार किया और वे लोग विनाक पर्वत की ओर चल पड़े।

वहाँ भाग्यानुसार तीनों को एक-एक अमूल्य रत्न मिला। सबने आपस में परामर्श किया—हम लोग इन रत्नों की इस निर्जन चोर-डाकुओं से भरे पथ में रक्षा कैसे करेंगे?

विद्वान् के पुत्र ने कहा कि तुम तो जानते ही हो कि मैं एक परामर्शदाता का पुत्र हूँ। मैंने एक उपाय सोचा है कि हम लोग अपने-अपने रत्नों को निगल जायँ और उन्हें अपने उदर में रक्षित करके चलें। इस प्रकार से हम लोग न तो व्यापारियों की और न दस्युओं आदि की आँखों में खटकेंगे।

इस विचार को सबने स्वीकार किया और भोजन के साथ सभी अपना-अपना रत्न निगल गये। किंतु जब वे ऐसा कर रहे थे, एक मनुष्य दूसरी ओर ढाल पर, इन लोगों की दृष्टि से परे विश्राम कर रहा था। इन लोगों को देखकर सोचने लगा कि तनिक देखूँ। मैं भी तो कई दिनों से रत्नों ही की खोज में भटक रहा हूँ किंतु भाग्य ने मेरा साथ न दिया। मुझे कुछ भी न मिला। क्यों मैं भी इनके साथ न हो लूँ? मार्ग में जब ये लोग कहीं थककर सो जायँगे मैं इनका उदर चीर कर रत्न हथिया लूँगा।

ऐसा विचार कर वह ढाल से नीचे उतर आया और इनके पास आकर कहा—महानुभावो, मैं अकेले इस सघन वन को पार करके घर पहुँचने में असमर्थ हूँ। कृपया मुझे भी अपने साथ चलने की अनुमति दीजिए। इन लोगों को स्वयं मित्रों की आवश्यकता थी। इसलिए उसकी बात सहर्ष स्वीकार कर ली। चारों साथ-साथ चल पड़े।

उसी वन में मार्ग के निकट ही सघन वृक्षों की ओट में भीलों का एक गाँव था। ये लोग चोर-डाकुओं का पेशा करते थे। ज्यों ही ये यात्रीगण ग्राम के निकट से निकले, पिंजड़े में बंद एक पक्षी गाने लगा। यह पक्षी ग्रामनायक के निजी पक्षियों में से एक था।

ग्रामनायक पक्षियों की भाषा जानता था। इसलिए वह पक्षी का तात्पर्य अच्छी तरह समझ गया। प्रसन्न होकर अपने आदमियों से उसने कहा—सुनो, पक्षी हमसे क्या कहता है? वह कहता है कि मार्ग पर जो पथिक जा रहे हैं उनके पास बहुमूल्य रत्न हैं। हमें उनको रोकना चाहिए। जाओ, उनको पकड़ लाओ।

जब ग्रामनायक के आदमी इन लोगों को पकड़ लाए तो नायक ने इन लोगों के कपड़े उतरवाकर इनकी तलाशी ली। किंतु उसे कुछ न मिला। इस पर नायक ने इन लोगों को केवल एक लँगोटी देकर छोड़ दिया। किंतु पक्षी ने फिर वही बात दोहराई। इस पर सरदार ने इन्हें फिर पकड़वा मँगाया। एक बार फिर इनकी नये सिरे से तलाशी ली गई। इस बार भी कुछ न मिला तो उन्हें फिर छोड़ दिया गया।

अब की बार जब वे चले तो पक्षी ने अधीरतापूर्वक फिर वही गाना गाया। नायक ने फिर उनको बुलाया और कहा—मैंने इस पक्षी की अनेक अवसरों पर परीक्षा ली है। इसने आज तक कभी असत्य नहीं बोला। यह कहता है कि तुम्हारे पास बहुमूल्य रत्न हैं। बताओ वे कहाँ हैं ?

इस पर इन लोगों ने उत्तर दिया—यदि रत्न हमारे पास होते तो आपकी इतनी कड़ी खोज लेने पर निकलते क्यों नहीं ?

नायक ने कहा—यदि यह पक्षी बार-बार इस बात को दोहराता है तो अवश्य रत्न तुम्हारे पेट में हैं। अब तो संध्या हो गई है। मैंने निश्चय कर लिया है कि प्रातःकाल होते ही तुम्हारे उदरों को रत्नों के लिये चीरूँगा।

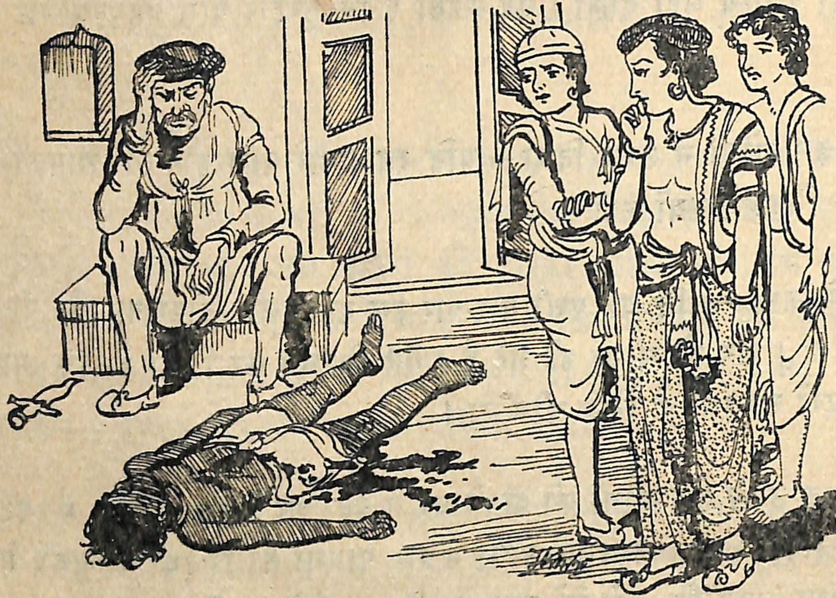
इसके बाद उसने उन लोगों को अपने घर में बंद कर दिया। रात में बंदी चोर ने सोचा—कल सवेरे जब नायक इनके उदरों में रत्न पाएगा तो निर्दयी लालची मेरे उदर को भी चीर डालेगा, क्योंकि इसे मेरे उदर में भी रत्न होने का विश्वास हो जायगा। इसलिए मेरी मृत्यु निश्चित है। अब मैं क्या करूँ ? मृत्यु समय निकट आने पर निर्दय पुरुष भी ज्ञानी एवं सदय हो जाता है।

उसने सोचा—इससे तो अच्छा यही होगा कि मैं ही पहले अपने आपको उसके समर्पण कर दूँ। इससे उनकी रक्षा हो जायगी। जब मेरे उदर में कुछ न निकलेगा तो अन्य व्यक्तियों के उदरों में भी रत्न न होने का उसे विश्वास हो जायगा। फिर वह चाहे कितना ही हृदयहीन क्यों न हो इन लोगों के मारने का विचार त्याग देगा। मैं उन लोगों के धन-जीवन की रक्षा करने का सुयश प्राप्त करूँगा। दूसरे जन्म में पवित्र वातावरण में जन्म पाऊँगा। इस प्रकार रात बीत गई।

प्रातःकाल ही से नायक इन लोगों के उदर चीरने का प्रबन्ध कर रहा था। तभी चोर ने उसका हाथ पकड़कर गिड़गिड़ाकर कहा—मैं अपने इन बंधुओं का उदर चीरे जाते नहीं देख सकता। कृपया पहले मेरे उदर को चीर डालिए।

नायक उसकी बात पर सहमत हो गया। उदर चीरने पर जब इसको रत्न नहीं मिला तब नायक ने पश्चात्ताप करते हुए कहा—धिकार है ! धिकार है !! मैंने लालच में अंधा

होकर केवल एक पक्षी के कहने पर भयंकर कार्य किया। इसी प्रकार अन्य व्यक्तियों के उदरों में भी रत्न नहीं होंगे।



राजकुमार तथा उसके मित्र मुक्त हो गये। वे वन से जल्दी निकलकर एक सुरक्षित स्थान पर पहुँच गये।

पण्डितोऽपि वरं शत्रुर्न मूर्खो हितकारकः।
वानरेण हतो राजा विप्राश्चौरेण रक्षिताः॥

अर्थात्—मूर्ख मित्र से बुद्धिमान् शत्रु श्रेष्ठ है। मूर्ख वानर (सेवक) से राजा की मृत्यु हुई तथा बुद्धिमान् चोर (शत्रु) के द्वारा ब्राह्मणों की रक्षा हुई।

तेरहवीं कथा

ब्राह्मण और बकरा

किसी नगर में मित्रशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था। माघ के एक प्रातःकाल जब आकाश में मेघ छाये हुए थे, धीमी-धीमी फुहार पड़ रही थी और ठंडी हवा चल रही थी, वह निकट के एक गाँव में किसी धनी से एक बकरा दान में माँगने के लिये गया क्योंकि वह उसका हवन में बलिदान करना चाहता था। एक सज्जन से एक अच्छा मोटा-ताजा बकरा लेकर वह लौट चला। रास्ते में बकरा इधर-उधर भागता था। इस कारण ब्राह्मण ने उसे अपनी पीठ पर लाद लिया और जल्दी-जल्दी घर की ओर चल दिया।



मार्ग में उसे तीन धूर्त मिले जो भूख से अत्यन्त व्याकुल थे। उन लोगों ने ब्राह्मण के पास बकरा देखकर आपस में सलाह की कि किसी प्रकार इस बकरे को ले लिया जाय तो

बड़ा आनन्द रहे। तीनों ने गुपचुप कुछ सलाह कर ली। फिर उनमें से एक धूर्त वेश बदलकर ब्राह्मण से थोड़ा आगे निकल गया और ब्राह्मण के पास आने पर उससे कहा—पूज्य महोदय! आप ऐसा घृणित कार्य क्यों कर रहे हैं? छिः छिः! एक अपवित्र कुत्ते को अपने ऊपर लाद कर लिये जा रहे हैं। क्या धर्मग्रन्थों में आपने नहीं पढ़ा कि कुत्ता, मुर्गा, चाण्डाल, गधा और ऊँट ये निकृष्ट जीव हैं। तिस पर आप जैसा धर्मात्मा ब्राह्मण ऐसा अपवित्र कार्य करे तो आश्चर्य की बात है। उसकी बात सुनकर ब्राह्मण बहुत क्रुद्ध हुआ और बोला—तुम बड़े अंधे मालूम होते हो जो बकरे को कुत्ता बताते हो। भाग जाओ, दुष्ट कहीं के!

धूर्त ने कहा—अरे महाशय! क्रुद्ध क्यों होते हो? जैसी इच्छा हो वैसा करो। यदि कुत्ता लादने में तुम्हें आनन्द आता है, तो लादो। यह कह कर वह एक ओर को चल दिया।

थोड़ी दूर आगे जाने पर एक दूसरे ठग ने ब्राह्मण से कहा—अरे महाराज! यह मरा बछड़ा आपका पालतू भी था, तब भी कम से कम आपको इसे इस प्रकार अपने कंधे पर लादना नहीं चाहिए था। क्या आपको पता नहीं कि पतित मनुष्यों और पशुओं का शव छूना मना है? इन्हें छूने पर मनुष्य उपवास और ब्रह्मभोज कराकर ही पवित्र हो सकता है।

यह सुनकर ब्राह्मण ने क्रुद्ध होकर कहा—अरे अंधे आदमी! बकरा नहीं पहचानते जो बछड़ा बताते हो।

इस पर उस धूर्त ने कहा—अरे! तो नाराज क्यों होते हो! मैंने गलती की जो तुम्हें बता दिया। जैसी तुम्हारी इच्छा हो, करो। यह कह कर वह चल दिया।

ब्राह्मण अभी थोड़ी ही दूर पहुँचा था कि उसको तीसरा धूर्त मिला और उसने भी टोक कर कहा—श्रीमान्! यह तो बड़े दुख की बात है जो आप ऐसा अनर्थ कर रहे हैं। आप गधा अपने ऊपर काहे को ढोकर लिये जा रहे हैं? क्या आपको पता नहीं कि इसके छू जाने पर नहाना पड़ता है? कृपया इसे छोड़ दीजिए, नहीं कोई और देखेगा तो बड़ी बदनामी होगी।

अब तो ब्राह्मण बहुत ही चकराया और सोचने लगा—बड़े आश्चर्य की बात है, जो भी मिलता है वह मेरे कंधे पर एक नयी वस्तु ही देखता है। अवश्य ही यह कोई राक्षस है

जो क्षण-क्षण में अपना रूप बदल लेता है। ऐसा सोचकर उसने बकरे को वहीं छोड़ दिया और घर चला गया।



उसके जाते ही तीनों धूर्तों ने मिलकर बकरे को पकड़ लिया और ठाट से उसका भोजन किया।

बहुबुद्धिसमायुक्ताः सुविज्ञाना बलोत्कटान्।
शक्ता वञ्चयितुं धूर्त्ता ब्राह्मणं छागलादिव॥

अर्थात्—अधिक बुद्धिमान् तथा ज्ञानी धूर्त बलवानों को भी वञ्चित कर सकते हैं, जैसे धूर्तों ने ब्राह्मण को बकरे से वञ्चित कर दिया।

चौदहवीं कथा

दानी सर्प

चितिकां दीपितां पश्य फटां भग्नां ममैव च ।
भिन्नश्लिष्टातु या प्रीतिर्न सा स्नेहेन वर्द्धते ॥

अर्थात्—दीप्त चितिका तथा मेरे फणों को देखो। जब प्रेम एक बार टूट जाता है तब वह स्नेहरस से पुनः नहीं जुटता या बढ़ता।

एक ब्राह्मण अपना सारा समय खेती-बारी में लगाता था किन्तु उसे कुछ लाभ न होता था।

उतरते जेठ की एक दोपहरी में, जब गर्मी खूब तेज पड़ रही थी, वह थक कर खेत के किनारे एक पेड़ के नीचे आराम करने के लिए बैठ गया। थोड़ी दूर पर उसने एक भयंकर काले साँप को अपने बिल के बाहर निकल कर फन फैलाए बैठे देखा। उसे देखकर ब्राह्मण ने सोचा—अवश्य ही यह इस भूमि का रक्षक देवता है। मैंने आज तक इसकी पूजा नहीं की। इसीलिए मुझे अपनी मेहनत का कोई फल इस खेती से नहीं मिला। अब मैं अवश्य इसकी पूजा करूँगा।



वह तुरन्त ही एक तश्तरी में थोड़ा सा दूध माँग लाया और साँप के निकट जाकर बोला—हे भूमि-रक्षक! आज तक मुझे यह विदित ही न था कि आप ही इस भूमि के रक्षक हैं। इसी कारण मैंने आपकी कभी पूजा न की, किन्तु अब आप मुझ पर दया कीजिए। यह कहकर वह दूध उसके सामने रख कर चला गया।

दूसरे दिन सवेरे आकर जब उसने तश्तरी देखी तो उसमें एक सोने की अशर्फी मिली। अब तो वह नित्य ही दूध लेकर जाता और उसके बदले में उसे एक अशर्फी मिलती। एक दिन वह कार्यवश कुछ दिनों के लिये किसी दूसरे नगर चला गया। पर जाने से पहले वह अपने लड़के को बिल पर नित्य दूध पहुँचाने का आदेश दे गया। लड़का पिता की आज्ञानुसार दूध ले जाकर साँप के बिल के पास रख आया।

दूसरे दिन जब लड़का तश्तरी लेने गया तो उसे भी उसमें एक अशर्फी मिली। यह देखकर उसने सोचा कि अवश्य इस बिल में अशर्फियाँ भरी हैं। यदि मैं इस साँप को मार डालूँ तो मुझे अशर्फियों का खजाना प्राप्त हो जायगा।

ऐसा विचार करके जब दूसरे दिन साँप को वह दूध देने लगा तो दूसरे हाथ से उसने कुल्हाड़े से साँप के फन पर वार किया। किन्तु भाग्य अथवा अभाग्यवश साँप उस वार से बच गया और उसने ब्राह्मण-पुत्र को डस लिया। लड़का तुरन्त ही मर गया। उसके सम्बन्धियों ने उसका अंतिम संस्कार आदि कर दिया।

इस घटना के दूसरे ही दिन ब्राह्मण नगर से लौट आया। इस समाचार को सुनकर बहुत दुखी हुआ। उसके मुँह से एकाएक ये शब्द निकल पड़े कि जीवों पर दया करने से मनुष्य सुखी रहता है पर निर्दयता करने से वह कष्ट भोगता है। मित्रो! लालच बुरी बला है। अतिथि के साथ कभी दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए। यह उसी का फल है।

दूसरे दिन ब्राह्मण दूध लेकर वहाँ पहुँचा पर लाख पुकारने पर भी साँप बाहर न निकला।

लड़के की मूर्खता से उसकी जान भी गई और नित्य जो धन मिलता था उससे भी हाथ धोना पड़ा।

पन्द्रहवीं कथा

आत्म-बलिदानी कबूतर

एक अत्यंत ही भयंकर सूरत का बहेलिया था। पक्षियों और जानवरों का आखेट करना ही उसका नित्य का कार्य था। इसी वृत्ति द्वारा वह अपना पेट पालता था। उसका संसार में अपना कहलानेवाला कोई भी नहीं था।

बहेलिया एक दिन जंगलों में अपना जाल, रस्सी का फंदा, आदि लिए आखेट की खोज में घूम रहा था। जंगल में घूमते-घूमते एकाएक आकाश में घनघोर काली घटाएँ छा गईं और बड़े जोर की आँधी और तूफान आ गया। हवा इतने जोर की चल पड़ी और पानी इतने जोर से बरसा कि मालूम होता था प्रलय आज ही हो जायगा। बहेलिया बिलकुल भीग गया। शीत के कारण उसके अंग-अंग अकड़ गये और उसका जी बार-बार घबड़ाने लगा। आँधी-पानी से अपनी रक्षा के निमित्त वह आश्रय खोजने लगा। घटाटोप अँधेरा होने के कारण कुछ दिखलाई न पड़ता था पर बीच-बीच में बिजली के चमक जाने से कुछ-कुछ कभी दिखाई पड़ जाता था। उसी में उसे निकट ही एक घना वृक्ष मिल गया। बहेलिया उसके नीचे खड़ा हो गया। इतना निठुर होने पर भी वह बार-बार भगवान् से प्रार्थना करने लगा—हे भगवान्! आज मेरी इस विपत्ति से रक्षा करो।



उसी पेड़ के एक खोखले में एक कपोत (कबूतर) रहता था। उसकी कपोती सवेरे

से बाहर गई हुई थी और अभी तक लौटी न थी। अतः वह उसके विरह में दुखी होकर विरह-गीत गा रहा था।

अभाग्यवश कपोती बिचारी बहेलिए के पिंजड़े में बन्द थी, जो उसी पेड़ के नीचे खड़ा था। पति को अपने वियोग में जब उसने इस प्रकार दुखी होकर गाते देखा तो तुरन्त ही वहीं से उत्तर दिया—हे प्राणपति ! द्वार पर आए हुए इस अतिथि का सत्कार करो। इसके लिए प्राणों को भी दान देना पड़े तो सहर्ष समर्पित करो। इसने अज्ञानवश मुझे बन्दिनी बनाया है। इस पर क्रोध मत करो, दया करो।

कपोती के ज्ञान और प्रेम से भरे वचन सुनकर कपोत का हृदय प्रेम से भर गया और उसका डर जाता रहा। वह निडर होकर बहेलिए के पास चला आया, और अत्यन्त नम्र शब्दों में कहा—आइए महानुभाव ! मैं धन्य हूँ जो आपने मेरे ऊपर कृपा करके यहाँ आने का कष्ट किया। कहिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? उसके नम्रता और प्रेम भरे शब्दों को सुनकर बहेलिए ने कहा—मैं शीत से ठिठुरा जा रहा हूँ, भाई कृपया कोई ऐसा उपाय करो जिससे मेरा जाड़ा दूर हो।

कपोत तुरन्त ही थोड़ी सूखी लकड़ी लाया तथा अग्नि का एक अंगारा ले आया। तुरन्त ही उसने आग तैयार कर बहेलिए से कहा—अब आराम से आप अपने हाथ-पैर गर्म कीजिए और विश्राम कीजिए। किन्तु मुझे दुख है कि मेरे पास आपके भोजन के लिए कुछ नहीं है।

बहेलिए ने कहा—बड़े आश्चर्य की बात है कि जब आपके घोंसले में एक अतिथि के भोजन के लायक कोई वस्तु नहीं तो फिर ऐसे स्थान में रहने से क्या लाभ जहाँ सिवाय दुख के और कुछ नहीं।

यह सुनकर कपोत ने कहा—चिन्ता न कीजिए, मैं अपने ऊपर यह कलंक न लगने दूँगा कि एक अतिथि मेरे द्वार से भूखा लौट गया। ऐसा कलंक लेकर जीने के बजाय मैं स्वयं को बलिदान कर दूँगा। कृपया आप तनिक ठहरें। इतना कहकर कपोत आग के निकट गया और उसकी परिक्रमा करके प्रसन्नमन आग में घुस गया तथा थोड़ी ही देर में वह भस्म हो गया।

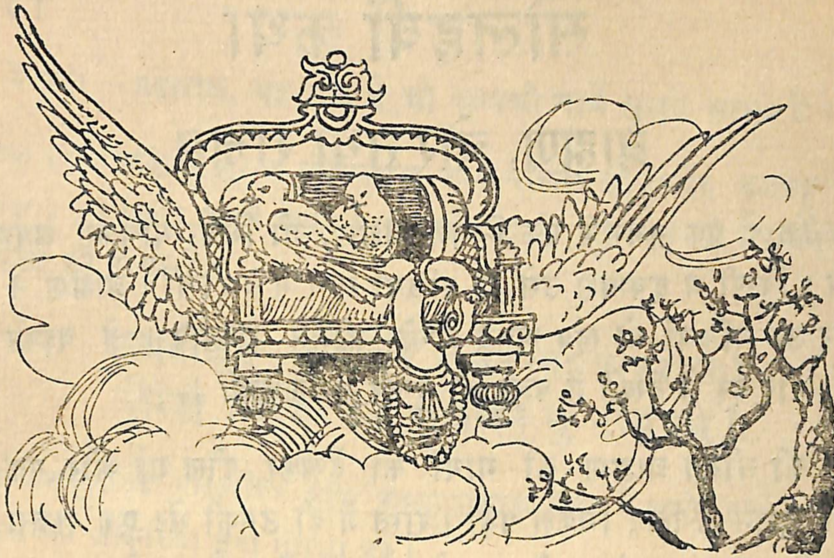
इस दृश्य को देखकर निष्ठुर बहेलिए का कलेजा भी हिल गया और उसके हृदय में दया उमड़ आई। उसके मुँह से अनायास निकल पड़ा—हाय ! एक अपराध हो जाने पर



मनुष्य सदैव चिन्ता की ज्वाला में जला करता है और अपने को कभी क्षमा नहीं करता, तथा जिस शरीर से अपराध हो जाता है वह भी एक न एक दिन अवश्य नाश को प्राप्त होता है । मैं, जिसका प्रत्येक विचार कलुषित है, सदैव बुरे कर्म ही किया करता हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से मैं कोई भी नीच कार्य न करूँगा और बाकी जीवन भर अपना समय ईश्वराराधना और तपस्या ही में बिताऊँगा। यह कहकर उसने अपना आखेट करने का सब सामान तोड़-फोड़ दिया और कबूतरी को स्वतंत्र कर दिया।

किन्तु पिंजरे से छूटकर कबूतरी भागी नहीं। वह एकटक उस अग्नि की ओर ताकती रही जिसमें उसका पति जल चुका था। कपोती के चेहरे पर उस समय ऐसा भाव प्रगट हुआ जिसे देखकर मनुष्य के रोंगटे खड़े हो जाते। कपोती ने कहा--स्वामी! तुम्हारे बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। मेरा सारा जीवन-सुख तो तुम्हारे साथ ही चला गया। अब मैं ही यहाँ रहकर क्या करूँगी। यह कहकर उसने भी प्रसन्नता से उस अग्नि में प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर उसने अपने पति को दिव्य तेज से आलोकित एक दिव्य रथ पर आरूढ़ देखा। उसने अपनी पत्नी का सहर्ष

स्वागत किया तथा हृदय से लगाकर कहा—प्रिये ! तुम धन्य हो । आओ, हम लोग अब देवलोक चलें । इसके बाद दोनों उसी रथ पर सवार होकर दिव्यलोक को चले गये ।



सोलहवीं कथा

ब्राह्मण, चोर तथा राक्षस

दक्षिण देश के एक नगर में एक निर्धन ब्राह्मण, जो भिक्षा माँगकर अपना पेट पालता था, रहता था। किसी ने दयावश उसे दो बछिया दान में दे दी थीं। ब्राह्मण ने इधर-उधर से माँग-जाँच कर उन बछियों को खूब अच्छे-अच्छे भोजन खिलाए। वे बढ़कर खूब मोटी-ताजी हो गईं और दूर से देखने में बहुत ही सुन्दर लगने लगीं।

एक चोर की नीयत ब्राह्मण की गायों को देखकर डोल गई और एक रात को वह रस्से लेकर उन्हें चुराने के लिए निकल पड़ा। रास्ते में ही उसकी भेंट एक राक्षस से हो गई। राक्षस की आकृति अत्यन्त भयंकर थी। उसके बड़े-बड़े दाँत और गड्ढेदार गाल थे। सम्पूर्ण शरीर पीला था। उसे देखकर चोर सहम गया और पूछा कि तुम कौन हो।

मैं सत्यवादी नाम का राक्षस हूँ। तुम कौन हो?—उसने पूछा।

मैं चोर हूँ और उस ब्राह्मण की गायें चुराने जा रहा हूँ।—चोर बोला।

राक्षस यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—मित्र, मैं हर तीसरे दिन भोजन करता हूँ। आज मैं उस ब्राह्मण को अपना भोजन बनाऊँगा। प्रसन्नता की बात है जो मेरा और तुम्हारा साथ हुआ।

दोनों ब्राह्मण के घर जाकर छिप गये और अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। जब ब्राह्मण सो गया तो राक्षस उसे खाने चला। चोर ने यह देखकर उसे रोका और कहा—पहले मैं गायें चुरा लूँ, तब तुम उसे खाना।

राक्षस ने कहा—वाह! अगर तुम्हारे चोरी करते में वह जग गया तो मेरा तो सारा मजा किरकिरा हो जायगा। नहीं नहीं, पहले मैं उसे खा लूँ तब तुम चोरी करना।

चोर ने कहा—वाह! अगर तुम्हारे खाते में कहीं कोई बाधा पड़ गई तो मैं घाटे में रहूँगा। इसलिए पहले मैं अपना काम कर लूँ तब तुम अपना काम करना।

इसी बात पर दोनों में मतभेद हो गया और दोनों आपस में झगड़ने लगे। इससे ब्राह्मण जग गया। उसे देखते ही चोर ने कहा—ब्रह्मदेव ! यह राक्षस है जो तुम्हें खाने के लिए आया है।

राक्षस ने कहा—महाराज, यह चोर है जो आपकी गायें चुराने आया है।

यह सुनते ही ब्राह्मण ने तुरन्त मंत्रोच्चारण करके राक्षस को और डण्डा उठाकर चोर को भगा दिया। इस प्रकार उसने अपने प्राण तथा गायों की रक्षा की। दुर्जनों के मतभेद से सज्जनों का लाभ ही होता है।

शत्रवोऽपि हितायैव विवदन्तः परस्परम्।
चौरेण जीवितं दत्तं राक्षसेन तु गोयुगम्॥

अर्थात्—शत्रुओं का पारस्परिक कलह कल्याणकारक होता है। चोर तथा राक्षस के पारस्परिक कलह से ब्राह्मण की जीवनरक्षा तथा गोरक्षा हुई।



———

सत्रहवीं कथा

दो राजकुमारियाँ

परस्परस्यमर्माणि ये न रक्षन्ति जन्तवः ।
त एव निधनं यान्ति वल्मीकोदरसर्पवत् ॥

अर्थात्—जो लोग परस्पर भेद की रक्षा नहीं करते वे वल्मीक तथा पेट में स्थित साँप की तरह मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

राजा देवराज के एक पुत्र था जो बहुत ही सुन्दर था। पर राजकुमार नित्यप्रति सोच में घुला करता था और दुर्बल होता जाता था, क्योंकि उसके पेट में एक सर्प रहता था। राजकुमार अपने जीवन से निराश होकर गृह त्याग कर चल दिया और एक दूसरे देश के एक मन्दिर के निकट जाकर पड़ रहा। जो कुछ भी वहाँ उसे खाने को मिल जाता वह खा लेता और पड़ा रहता।

उस देश के राजा अंगराज के दो नवयौवना कन्याएँ थीं। दोनों ही अत्यन्त सुशील, सुन्दर और चतुर थीं। बड़ी लड़की नित्य अपने पिता के पास जाकर कहती—जय हो महाराज! सब आपकी ही महिमा है जिससे प्रजा सुखी है। किन्तु दूसरी नित्य ही महाराज से कहती—यह सब अपने-अपने भाग्य का फल है, महाराज! और भगवान् की महिमा है। उसकी इस बात से क्रुद्ध होकर अंगराज ने अपने मंत्रियों से कहा कि इसे किसी परदेशी को दे दो और अपने भाग्य के फल का आनन्द लेने दो।

राजा की आज्ञानुसार मंत्रियों ने राजकुमारी का उसी राजकुमार के साथ, जिसे वे भिखारी समझे थे, ब्याह कर दिया। दो-एक दासियाँ भी दान में दे दीं। राजकुमारी ने अत्यन्त ही श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक उसे अपना स्वामी स्वीकार किया और उसे लेकर दूसरे देश चली गई।

वहाँ उसने राजकुमार को नगर के बाहर सरोवर के किनारे एक घर में टिका दिया। स्वयं दासियों को लेकर नगर के बाजार में घर की आवश्यक वस्तुएँ लेने चली गई। जब

वहाँ से लौटकर आई तो उसने देखा कि राजकुमार एक टीले पर सिर टेके, मुँह बाए अचेत पड़े हैं और उनके मुख पर एक काला सर्प अपना सिर बाहर निकाले बैठा है। उसी से थोड़ी दूर पर उसी टीले पर एक दूसरा सर्प भी अपने बिल से बाहर सिर निकाले बैठा था। उसने जब दूसरे सर्प को देखा तो बहुत क्रुद्ध होकर कहा—अरे नीच! इतने सुन्दर राजकुमार को कष्ट देते तुम्हें लज्जा नहीं आती।

दूसरे सर्प ने कहा—और तुझे दो स्वर्ण कलशों पर अधिकार जमाने में लाज नहीं आती। इस प्रकार दोनों ने एक दूसरे का भेद खोल दिया।

पहले सर्प ने कहा—अरे धूर्त! शायद तुझे यह नहीं मालूम कि काली तिल्ली पिला देने से राजकुमार चंगा हो सकता है।

दूसरे ने कहा—शायद तुम्हें यह नहीं मालूम कि गर्म पानी मेरे बिल में डाल देने से मेरा नाश हो जायगा।

पेड़ की ओट में खड़ी राजकुमारी सब कुछ देख-सुन रही थी। उसने यही किया। राजकुमार को तो काली तिल्ली पिलाकर चंगा कर लिया और बिल में गरम पानी डालकर खजाने पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वह अपने घर लौट आई। उसके माता-पिता उसकी कहानी सुनकर चकित रह गये। उन्होंने फिर से उसे आराम से महल में रक्खा।



अठारहवीं कथा

चार मित्र

दक्षिण के महिलारोप्य नामक नगर के निकट एक सघन वन में एक विशाल वट-वृक्ष था। उस वृक्ष की बड़ी-बड़ी डालों में पक्षियों ने अपने घोंसले बना रक्खे थे तथा उसकी शीतल छाया में पथिक विश्राम कर सकते थे। अनेक बन्दर भी उस पर निवास करते थे। उसके खोखलों में अनेक प्रकार के कीड़े-मकोड़ों ने भी घर बना रक्खे थे।

उसी वृक्ष पर लघुपतन नामक एक कौवा भी रहता था। एक दिन जब वह महिलारोप्य की ओर भोजन की खोज में जा रहा था उसने एक शिकारी (बहेलिए) को हाथ में जाल लेकर आते हुए देखा। उसकी आकृति अत्यन्त भयंकर थी। रूखे बाल सिर पर खड़े थे, और दो लाल-लाल आँखें उसके चेहरे में चमक रही थीं।

उसे देखकर लघुपतन के मन में विचार उठा कि अवश्य ही यह नीच मेरे वट-वृक्ष की ओर उस पर निवास करनेवाली चिड़ियों को पकड़ने जा रहा है। इसका उस ओर जाना ही इस बात को साफ प्रकट कर रहा है। क्या जानें वे पक्षी बेचारे इससे बच पावेंगे या नहीं। मुझे अवश्य ही इस विपत्ति को टालने का कोई उपाय करना चाहिए। यह सोचकर वह तुरन्त ही वृक्ष की ओर लौट पड़ा। और सारे पक्षियों को आनेवाली विपत्ति से परिचित करा दिया। एक बहेलिया इस ओर जाल और चारा लिए तुम लोगों को फँसाने की इच्छा से आ रहा है। तुम लोग कहीं चारा देखकर उसकी चाल में न आ जाना। कृपया उस चावल से इस प्रकार बचना जैसे विष से।



बहेलिए ने वृक्ष के निकट जाकर जाल बिछा दिया और उसके चारों ओर चावल बखेर दिये। फिर वह वृक्ष से कुछ दूर जाकर, ओट में छिपकर, जाल में पक्षियों के फँसने की बाट जोहने

लगा। वट-वृक्ष के सारे पक्षियों को उसकी चाल का पता चल गया था। अतः उनमें से कोई भी चारे को देखकर भी चुगने नहीं गया। किन्तु थोड़ी देर पश्चात् कपोतराज चित्रग्रीव अपने कुछ साथियों समेत उस ओर से उड़ता हुआ चारे की खोज में निकला। उन लोगों की दृष्टि चारे पर पड़ी। लघुपतन के लाख समझाने पर भी वे लोग उस चारे के लालच में जाल पर जाकर बैठ गये और फँस गये। लालच में फँसकर लोग अपना सर्वनाश कर डालते हैं तथा विपत्ति के समय में उनकी बुद्धि भी नष्ट हो जाती है।

'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः' वाली कहावत चरितार्थ हुई। बहेलिए ने जब कपोतों को जाल में फँसे देखा तो वह डण्डा लेकर उन्हें मार डालने के लिए जाल की ओर लपका। चित्रग्रीव ने यह देखकर अपने साथियों से कहा—हतोत्साहित न हो। हम लोगों को इस समय संगठित रूप में कार्य करना चाहिए। बहेलिए के आने के पूर्व हम लोगों को एक साथ मिलकर इस जाल को लेकर उड़ना चाहिए। बिना संगठन के यह कार्य असम्भव है। यदि इस समय हम लोगों ने इस प्रकार कार्य न किया तो हमारा बचना असम्भव है। संगठन में ही शक्ति है।

चित्रग्रीव की बात मानकर वे लोग संगठित रूप में तीर की तरह उड़े तथा साथ में जाल को भी उड़ा ले चले। आकाश में एक चंदोवा सा ताने व निर्भय होकर चल दिये। बहेलिया यह दृश्य देखकर भौचक्का सा रह गया। फिर भी यह सोचकर कि जब थोड़ी देर में इनका यह संगठित रूप छिन्न-भिन्न हो जायगा तब अवश्य ही यह सब मेरे हाथ लग जायँगे, उनका पीछा करने लगा। चित्रग्रीव ने बहेलिए का इरादा तुरन्त भाँप लिया। उसने अन्य कपोतों को आदेश देकर जंगलों और पहाड़ों की ओर उड़ना आरम्भ कर दिया। यह देखकर बहेलिए की रही-सही आशा भी जाती रही और वह अपने जाल का सोच करते हुए खिन्न चित्त से लौट गया।

चित्रग्रीव ने जब बहेलिए को वापस जाते देखा तो उसने अपने साथियों से कहा कि अब डरने की कोई बात नहीं। चलो, अब हम लोग महिलारोप्य के उत्तर की ओर चलें। वहाँ हिरण्यक नामक मेरा एक परममित्र चूहा रहता है। वह हम लोगों के बंधन काट देगा।

इधर लघुपतन भी इस आकस्मिक घटना को देखकर चकित रह गया। उसने बहेलिए को इनका पीछा करते भी देखा था। इस घटना का परिणाम देखने की उत्सुकता उसके मन में इतनी बढ़ी कि वह भी अपनी भूख-प्यास भूलकर इन लोगों के पीछे हो लिया।

कपोतराज और उसके साथी उड़ते हुए हिरण्यक के यहाँ पहुँचे। चित्रग्रीव ने हिरण्यक को पुकारा—मित्र हिरण्यक ! जल्दी आओ, देखो हम लोग विपत्ति में फँसे हैं। उनकी बात सुनकर हिरण्यक ने अपने बिल के अन्दर से ही पूछा—तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आये हो ? कौन सी विपत्ति में तुम फँसे हो ? कृपया सब विस्तारपूर्वक कहो। चित्रग्रीव ने कहा—मैं तुम्हारा मित्र चित्रग्रीव हूँ। जल्दी बाहर आओ, मुझे तुम्हारी सहायता की अति शीघ्र आवश्यकता है।

यह सुनकर हिरण्यक झट से बाहर निकल आया। चित्रग्रीव की यह दशा देखकर उसने दुख प्रकट किया और उसका कारण पूछा। चित्रग्रीव ने कहा—तुम इसका कारण क्यों पूछते हो ? तुम्हें विदित होगा ही कि भाग्य पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार ही फल देता है। यह दशा हमारी अपनी चटोरी जीभ के कारण हुई है। कृपया हम लोगों को जल्दी ही इस बन्धन से छुड़ाओ।

हिरण्यक ने कहा—पक्षी मीलों दूर से भूमि में बिखरे चारे के कणों को देख लेते हैं पर अभाग्यवश वे वहाँ बिछे जाल को नहीं देख पाते। महाबली सिंहों, विष भरे सर्पों और आकाश में उड़नेवाले पक्षियों को बन्दी बनाकर रखनेवाले मनुष्य भी गरीब होकर अनेक दुख उठाते हैं। सच है, भाग्य का लिखा अमिट है। आकाश में उड़नेवाले पक्षी और गहरे जलों के भीतर रहनेवाली मछलियाँ भी आपत्तियों में फँसकर प्राण गँवा देती हैं तब भला साधु और पतित जीवन में अन्तर ही क्या है ? किसी सुरक्षित स्थान में रहने की आवश्यकता ही क्या है ? मृत्यु अपने निश्चित समय पर आवेगी ही।

ऐसा कहकर हिरण्यक कपोतराज के बन्धन काटने चला। पर चित्रग्रीव ने कहा—मित्र ! पहले मेरे साथियों के बन्धन काटो। हिरण्यक ने क्रुद्ध होकर कहा—क्या मूर्खता की बातें कहते हो। पहले राजा पीछे प्रजा। चित्रग्रीव ने कहा—ऐसा न कहो मित्र ! यह सब मेरे दास हैं। इन्होंने मेरी सेवा के लिए अपने सुखी गार्हस्थ्य जीवन का त्याग किया है। क्या इसके उपलक्ष में मुझे इनके प्रति इतना सा भी विचार न होना चाहिए। वे दास अपने राजा का साथ कभी नहीं छोड़ते जो उनके साथ मनुष्यता का व्यवहार करता है। विश्वास और प्रेम सब सुखों का मूल है। जो स्वामी अपने अनुचरों की भलाई का सर्वदा ध्यान रखता है उसके लिए अनुचर अपना सर्वस्व अर्पण करता है।

इसके अतिरिक्त मेरे बन्धनों को काटने के बाद तुम्हारे दाँतों में पीड़ा पैदा हो जाय अथवा मेरे साथियों के बन्धन कटने के पहले वह क्रूर बहेलिया ही आ जाय, तब तो मुझे

अवश्य ही नरक मिलेगा। जो राजा सेवक की आपत्ति को समझकर भी चुप रहता है वह नरकगामी होता है।

हिरण्यक ने प्रसन्न होकर कहा—कपोतराज, मैं राजधर्म भली भाँति जानता हूँ। केवल तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ही ऐसा कहा था। मैं पहले इन्हीं के बन्धन काटूँगा। जो राजा शुभ दिनों में अनुचरों का उचित सत्कार करते हैं वे विश्व में सम्मान प्राप्त करते हैं।

ऐसा कहकर हिरण्यक ने सब कपोतों और चित्रग्रीव के बन्धन शीघ्र काट दिये। वे लोग स्वतंत्र होकर हिरण्यक को अनेकों हार्दिक धन्यवाद देकर अपने घरों को गये। कठिन से कठिन कार्य भी मित्र का सहयोग पाकर सम्पूर्ण होता है।

यह सारी घटना देखकर लघुपतन हिरण्यक की मन ही मन सराहना कर रहा था और सोच रहा था कि ऐसे बुद्धिमान् और नीतिमान् को अवश्य ही मित्र बनाना चाहिए। मनुष्य चाहे कितना ही धनी और शक्तिशाली क्यों न हो, पर मित्रों को पाकर सर्वदा प्रसन्न होता है।

ऐसा सोचकर वह हिरण्यक के बिल के पास गया और उसका नाम लेकर उससे बाहर आने की प्रार्थना की। हिरण्यक ने सोचा—शायद यह कोई कपोत है जिसके बन्धन कटने से रह गये हों। फिर भी उसने अन्दर ही से पूछा—आप कौन हैं? मैं लघुपतन नामक कौवा हूँ—उसने कहा। यह सुनकर हिरण्यक अपने बिल के और भी अन्दर घुस गया और बोला—महानुभाव! आप तुरन्त यहाँ से चले जाइए। परन्तु लघुपतन ने कहा—मुझे आपसे एक अत्यन्त आवश्यक कार्य है। कृपया मुझसे एक बार मिलने का कष्ट तो कीजिए।

"किन्तु आपसे मिलने में मुझे कोई लाभ नहीं प्रतीत होता।" "मुझे तो आप पर पूर्ण विश्वास है। मैं अपनी आँखों से कपोतराज की सारी घटना देख चुका हूँ। सम्भवतः मैं भी किसी दिन ऐसी ही विपत्ति में फँस सकता हूँ। तब आपकी सहायता से मुक्ति पा सकता हूँ। कृपया मुझे अपनी मित्रता का सौभाग्य प्रदान कीजिए।"

"महानुभाव, मैं आपका भोजन हूँ फिर भला आपके प्रति मित्रता की भावना कैसे रख सकता हूँ? भला दो भिन्न प्रकृति के जीवों में कहीं मित्रता हो सकती है?"

"सुनिए! मैं आपके द्वार पर पड़ा हूँ। यदि आप मुझसे मित्रता न करेंगे तो मैं यहीं अनशन करके प्राण त्याग दूँगा।"

"किन्तु मैं अपने शत्रु से कैसे मित्रता जोड़ सकता हूँ ? किसी भी लाभ की आशा में शत्रु का मित्र नहीं बनना चाहिए क्योंकि खौलता हुआ भी जल आग को बुझा देता है।"

"भला ऐसा क्यों ? आप मुझे पहिचानते तक नहीं, फिर झगड़ा क्यों होगा ! ऐसी व्यर्थ की बात करने से क्या लाभ ? तिल को ताड़ बनाने से क्या लाभ ?"

"महानुभाव ! झगड़ा भी दो प्रकार का होता है—एक प्राकृतिक और दूसरा सामयिक। आप तो मेरे प्राकृतिक शत्रु हैं।"

"महाशय ! मैं दोनों प्रकार की शत्रुता के भेद जानना चाहता हूँ।"

"जो वैमनस्य किसी घटनावश दो व्यक्तियों के बीच पैदा हो जाता है, वह तनिक सी चेष्टा और परिश्रम से दूर भी किया जा सकता है। किन्तु जिस वैमनस्य की जड़ मनुष्य की प्रकृति में ही उपस्थित हो वह बिना एक दूसरे के प्राण लिए समाप्त नहीं होती। साँप और नेवला में, शाकाहारी और मांसभक्षी जीवों में, अग्नि और जल में, सुर और असुर में, कुत्ते और बिल्ली में, सौत सौत में, सिंह और हाथी में, शिकारी और मृग में, कौआ और उलूक में, विद्वान् और मूर्ख में, स्त्री और उपस्त्री में, साधु और असाधु में—विरोधी प्रकृति होने के कारण सदा ही वैमनस्य रहता है। ये जीवन भर लड़ते ही रहते हैं।"

"यह व्यर्थ की बात है। सुनिए ! मित्र को वैर का कारण ही नहीं प्रस्तुत होने देना चाहिए।"

"परन्तु मेरे और आपके बीच मैत्री का व्यवहार किस प्रकार हो सकता है ! कपटी मित्र पर विश्वास करनेवाला महामूर्ख मृत्यु को बुलाता है। धूर्तों को ज्ञान से लाभ नहीं होता। वे अपने उपदेशक पाणिनि तथा जैमिनि को भी नष्ट कर देते हैं।"

लघुपतन ने कहा—बिलकुल ठीक, किन्तु कारणवश परोपकार पाकर साधारण जन भी अच्छे मित्र हो जाते हैं।

हिरण्यक बोला—धूर्त मित्र कच्चे मिट्टी के बर्तनों के समान होते हैं। उनका बनना कठिन होता है पर टूटते क्षणों में हैं। इसके विपरीत भले मित्र सुवर्णपात्रों के सदृश बन तो आसानी से जाते हैं पर टूटते बड़ी कठिनता से हैं।

लघुपतन ने उत्तर दिया—मैं आपको शपथपूर्वक विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आपसे बिलकुल निष्कपट भाव से कह रहा हूँ।

पर हिरण्यक ने कहा—मुझे आपकी बातों पर तनिक भी विश्वास नहीं—शत्रु के लाख शपथ खाने पर भी कभी उसका विश्वास न करना चाहिए। इन्द्र ने भी वृत्र को न मारने की शपथ खाकर ही मारा था। देवता भी अपने शत्रु को कदापि नहीं मार सकते जब तक कि वह उन पर विश्वास करने की मूर्खता न करे। शत्रु तनिक सा सहारा पाते ही नाव के छोटे छेद के समान धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और अपना अधिकार जमाने की चेष्टा करने लगता है। अधिक विश्वास तो अच्छे या बुरे किसी भी मनुष्य पर नहीं करना चाहिए। दुर्बल से दुर्बल भी अपने से शक्तिशाली से तब तक नहीं हार सकता जब तक कि वह उसका विश्वास न करे। शक्तिशाली लोगों का नाश भी अपने से निर्बलों द्वारा उन पर विश्वास करने ही से हो जाता है।

लघुपतन सहसा इस बात का कोई उत्तर न दे सका किन्तु वह मन ही मन हिरण्यक की नीति-शास्त्र की विज्ञता की सराहना करने लगा। उसके हृदय में उसका मित्र बनने की अभिलाषा और भी बलवती हो उठी।

उसने हिरण्यक से कहा—बुद्धिमानों का कथन है कि मित्रता दो मनुष्यों में कुछ पग साथ चलने ही से पैदा हो जाती है। अब भला जब हम लोगों में इतनी देर तक बातचीत हो चुकी है, तब क्या कहना? इसलिए अब मैं आपका आपकी इच्छा के विरुद्ध भी मित्र हो ही गया। सुनिए, यद्यपि आप मुझ पर विश्वास नहीं करते और आप बिल के अन्दर ही से बात करते हैं फिर भी हम और आप नित्य ही इसी प्रकार से नीति की बातें कर आनन्द उठाया करेंगे।

यह सुनकर हिरण्यक ने सोचा—कौवा बुद्धिमान् मालूम होता है और इसने सत्य ही कहा है। अवश्य ही यह मित्र बनाने योग्य है। फिर कौवे से कहा—मित्र! मुझे तुम पर विश्वास हो गया, यद्यपि तुम्हारी परीक्षा लेनी आवश्यक थी। अब मैं तुम्हारे सामने उपस्थित होता हूँ।

इतना कहकर वह अपने बिल के बाहर चला पर कुछ सोचकर फिर ठिठक गया। कौवे ने पूछा—क्या आपके मन में मेरे प्रति फिर कोई शंका पैदा हुई? हिरण्यक ने कहा—ऐसा नहीं, आपके विचार को अच्छी तरह परखकर आप पर तो मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है। परन्तु आपके किसी अन्य मित्र के द्वारा भी तो मेरा नाश हो सकता है।

इस पर कौवे ने कहा—जो मित्रता प्राणों की बाजी लगाकर की जाती है उसमें फिर

भय कैसा ? यह सुनकर हिरण्यक तुरन्त ही बाहर निकल आया। फिर दोनों में प्रेम-सम्भाषण होने लगा। थोड़ी देर बाद कौवा बोला—अब मैं आपको अधिक देर तक कष्ट न दूँगा क्योंकि मुझे भी चारे की खोज में जाना है।

कौवा हिरण्यक से विदा लेकर सघन वन की ओर उड़ गया। भाग्यवश उसे निकट ही किसी सिंह द्वारा मारे गये एक जंगली बैल का शरीर मिल गया। उसने भर पेट भोजन किया और एक बड़ा मांस का टुकड़ा लेकर वह हिरण्यक के यहाँ गया और वह उसे भेंट किया। उसने भी कौवे का अपने अन्न-भण्डार के चावलों से स्वागत किया।

अब दोनों मित्र नित्य ही मिलने लगे और कुछ समय में दोनों में गाढ़ी मित्रता हो गई। एक दिन कौवा बहुत ही दुखी होकर हिरण्यक के पास आया और कहा—मित्र ! इस देश में अकाल पड़ जाने के कारण अब हमारे भोजनों के भी लाले पड़ गये हैं—इस कारण अब मैं यह देश छोड़कर जा रहा हूँ। हिरण्यक ने पूछा—कहाँ जाने का विचार है ? यहाँ से सुदूर दक्षिण के सघन वन की झील में मेरा एक मित्र मंथरक नामक कछुवा रहता है। वह मुझे अधिक प्रिय है। नित्य ही वह मुझे मछलियाँ मारकर दिया करेगा और इस प्रकार मेरा जीवन भी चिन्ता-रहित आनन्दपूर्वक बीतेगा। यहाँ रहकर मैं अपनी जातिवालों की असामयिक मृत्यु होते नहीं देख सकता।

हिरण्यक ने कहा—यहाँ की कुछ घटनाओं के कारण मैं भी यह जगह अब छोड़ना चाहता हूँ। मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूँगा। कौवे ने पूछा—क्यों ? चूहे ने कहा—यह एक लम्बी कथा है जो मैं तुम्हें बाद में बताऊँगा। इस पर कौवे ने कहा—मगर मेरा और तुम्हारा साथ कैसे हो सकता है ? मैं तो पक्षी हूँ इसलिए उड़कर चलूँगा और तुम ?

हिरण्यक ने कहा—यदि तुम्हें मेरी चिन्ता है, तो तुम मुझे अपनी पीठ पर बैठाकर ले चलो। इस प्रकार दोनों उस स्थान को छोड़ दक्षिण की ओर चल दिये।

जब यह दोनों उस झील के पास पहुँचे तो मंथरक बाहर बैठा हुआ था। उसने जब कौवे की पीठ पर चूहे को बैठे हुए देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह सोचने लगा—यह तो बड़ी अजीब सी बात है। अवश्य ही इसमें कुछ भेद है। मुझे चुपचाप झील की शरण लेनी चाहिए। वह तुरंत झील में घुस गया।

लघुपतन ने हिरण्यक को पेड़ के एक खोल में बैठा दिया और मंथरक को पुकारा—फिर उसे अपनी कथा सुनाई और उससे हिरण्यक का परिचय कराया। मंथरक ने हिरण्यक से उसके बारे में पूछा।

इस पर हिरण्यक ने कहा—महिलारोप्य नगर के उत्तर में मेरे निवास-स्थान के निकट ही एक महादेवजी का मन्दिर और मठ है। इसी मठ में ताम्रचूड़ नामक एक साधु रहता था। वह नगर में भिक्षा माँगकर अपनी जीविका चलाता था। बचा-खुचा भोजन वह एक कील में टाँगकर सो जाया करता था। मैंने अपना एक बिल वहाँ भी बना रक्खा था और मैं नित्य ही भोजन के लिए वहाँ जाया करता था। साधु के बर्तन में जो कुछ भोजन होता उसे मैं खा लिया करता था। जब कभी भोजन अधिक होता मैं उसे अपने बिल के भण्डारघर में रख आता था। ताम्रचूड़ मुझसे अपने भोजन को बचाने का बहुत प्रयत्न करता था। वह प्रायः सोते से उठकर एक डण्डा लेकर दीवाल तथा भोजन का बर्तन खटखटा दिया करता था। उसका शब्द सुनकर मैं भाग जाता था और उसके सोते ही फिर आ जाता था। इसी प्रकार उसके और मेरे बीच संघर्ष हुआ करता था और मेरे दिन मजे में कट रहे थे।

एक दिन ताम्रचूड़ के यहाँ बृहस्पति नामक एक अन्य साधु अतिथि-रूप में आया। ताम्रचूड़ और वह दोनों भोजन करके लेट गये। ताम्रचूड़ ने बचा हुआ भोजन भिक्षा-पात्र में रखकर कील में लटका दिया था। दोनों आपस में बातचीत करने लगे। बृहस्पति उसे अपने किस्से सुनाने लगा। किन्तु थोड़ी-थोड़ी देर में ताम्रचूड़ लकड़ी से जमीन पीट देता था। बृहस्पति की बातों में इस खटखट से बाधा पड़ती थी। इससे वह बहुत क्रुद्ध हो गया और ताम्रचूड़ से कहा—सम्भवतः तुम मेरे आगमन से प्रसन्न नहीं हो। इसलिए तुम्हें मेरी बातों में कोई आनन्द नहीं आ रहा है। तुम किसी दूसरे ही विचार में मग्न हो। अच्छा, प्रातः होते ही मैं यहाँ से चल दूँगा। जहाँ अतिथि का सम्मान न हो वहाँ सज्जन को भूलकर भी नहीं ठहरना चाहिए।



यह सुनकर ताम्रचूड़ ने कहा—मित्र! ऐसा न कहो, मैं तुम्हारी बातें तो ध्यानपूर्वक सुन रहा हूँ, परन्तु इस दुष्ट चूहे के कारण परेशान हूँ। यह नित्य ही आकर मेरा भोजन खा लिया करता है। बार-बार भगाने पर भी नहीं जाता।

बृहस्पति ने कहा—अवश्य ही इस खूँटी के पास कहीं उसका बिल है, नहीं तो भला वह इतना ऊँचा कैसे कूद सकता है ? अच्छा, सबेरे तुम मुझे एक कुदाल देना मैं उसका बिल खोद डालूँगा और जो कुछ भी अनाज उसने वहाँ जमा कर रक्खा होगा उठा लाऊँगा। इससे वह पुनः आने का साहस न करेगा।

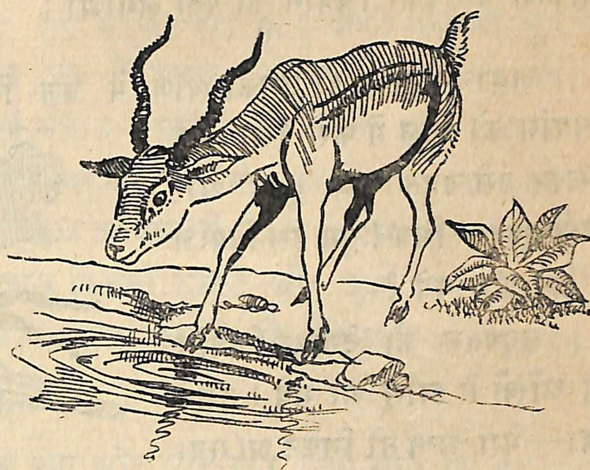
उसकी बातें सुनकर मैं घबड़ा गया और तुरन्त ही भाग जाने की ठान ली। परन्तु अभाग्यवश भागने में हमारे रास्ते में एक बिल्ली आ गई जिसने मेरे कई अनुचरों को यमलोक पहुँचा दिया और बहुतों को घायल कर दिया। मैं और बचे-खुचे मेरे अनुचर किसी प्रकार अपनी जान कठिनाई से बचाकर बिल में घुस गये। दूसरे दिन खून के छींटों के चिह्न देखकर बृहस्पति ने मेरे बिल का पता लगा लिया और उसे खोदकर मेरा सारा भण्डार लूट लिया।

जब मैं वहाँ पहुँचा तो अपने भण्डार की दुर्दशा देखकर दुख से मेरी छाती फट गई। मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। बिल्लीवाली दुर्घटना के कारण मेरे साथी मुझसे बहुत नाराज हो गये और मुझे बुरा-भला कहा। दूसरे दिन मैंने बृहस्पति को ताम्रचूड़ से कहते सुना—मित्र ! अब चिन्ता की कोई बात नहीं क्योंकि भण्डार लुट जाने से अब चूहों की शक्ति क्षीण हो गई और अब वे तुम्हारी खूँटी तक नहीं पहुँच सकते। यह सुनकर मैं और भी घबड़ा गया। अँधेरा हो जाने पर मैंने एक बार उस खूँटी पर पहुँचने की कोशिश की पर व्यर्थ। मेरी आहट पाकर ताम्रचूड़ ने फिर डंडा खटकाया पर बृहस्पति ने कहा—अब इसकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि शक्ति घट जाने से अब वह खूँटी तक नहीं पहुँच सकते। उसकी बात सुनकर मुझे क्रोध चढ़ आया। मैंने अपना सम्पूर्ण बल लगाकर छलाँग मारी परन्तु खूँटी तक पहुँचने के लिए असफल रहा। मेरी ऐसी हालत देखकर मेरे साथी मुझे छोड़कर चले गये। अब मैं अकेला रह गया। रात में मैंने एक बार फिर भोजन तक पहुँचने का जी तोड़ प्रयत्न किया पर पकड़ा गया और मुझे ताम्रचूड़ का डण्डा खाना पड़ा जिससे मैं मरते-मरते बचा।

इन्हीं कारणों से मैं भी देश छोड़ देने को विवश हो गया। जब मुझसे मित्र लघुपतन ने तुम्हारे बारे में कहा तो मैं भी तुरन्त यहाँ आने के लिए तैयार हो गया।

हिरण्यक की कथा सुनकर मंथरक ने उसे धैर्य देते हुए कहा—हे मित्र ! बीती घटनाओं को भूल जाओ। अब जो भी रूखा-सूखा भोजन हम लोगों को यहाँ प्राप्त होगा हम लोग उस पर ही निर्वाह करेंगे और चैन से जीवन बिताएँगे।

जब तीनों में इसी प्रकार बातें हो रही थीं, चित्रांग नामक एक हिरन उस झील में जल पीने के लिये आया। दूर से एक दूसरे जानवर को आता देखकर कौवा झट से आकाश में उड़ गया। चूहा अपने बिल में घुस गया और कछुए ने जल की शरण ली। लघुपतन ने ऊपर से उड़कर नये जानवर को देखा कि वह हिरन है तो झील के पास आया और उसने मंथरक को पुकार कर कहा कि बाहर निकल आओ। डरने की कोई आवश्यकता नहीं। मंथरक ने बाहर निकलकर अतिथि के प्रति आदर प्रकट करते हुए कहा—स्वागत मित्र ! आओ हमारे सरोवर का मीठा और शीतल जल पियो तथा खूब चैन से नहाओ।



चित्रांग ने देखा कि यह तो साधारण जीव है और इससे उसे कोई हानि नहीं पहुँच सकती तो उसने सोचा कि क्यों न इससे मित्रता कर ली जाय ? ऐसा सोचकर वह उसके निकट आया। बातचीत होने पर मंथरक ने उससे पूछा कि वह इस वन में किस प्रकार आया। उसने बताया कि चारों तरफ से शिकारियों द्वारा घिर जाने पर वह किसी प्रकार से कूदता-फाँदता इधर आ निकला और पानी पीने चला आया। फिर उसने उन लोगों से मित्रता करने की इच्छा प्रकट की।

मंथरक ने कहा—हम लोग तो छोटे जानवर हैं फिर भला हमसे मित्रता करने से तुम्हें क्या लाभ ? तुम्हें तो अपने बराबरवाले से मित्रता करनी चाहिए।

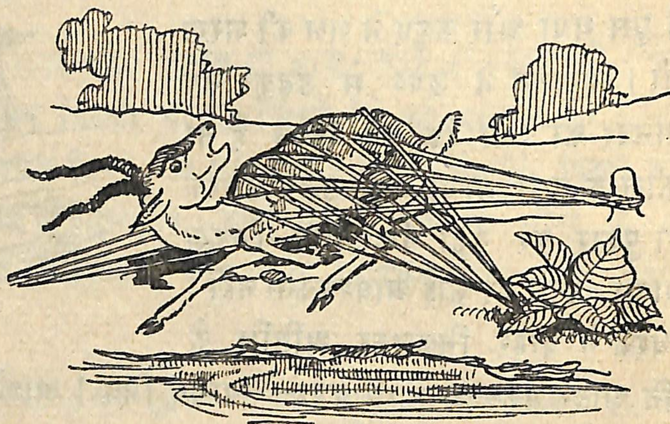
चित्रांग ने कहा—ऐसा कहकर आप मुझे लज्जित न करें। आपकी नम्रता देखकर ही मेरे हृदय में आपका परिचय प्राप्त करने की इच्छा हुई। इस प्रकार उन लोगों में मित्रता हो गई।

अब चारों उस वन में मित्र बनकर रहने लगे और आनन्द के साथ अपना समय व्यतीत करने लगे।

एक दिन चित्रांग निश्चित समय के अनुसार झील के किनारे नहीं आया। इससे

मंथरक आदि बहुत चिन्तित हो उठे। हिरण्यक ने लघुपतन से कहा—मित्र ! तुम तनिक आकाश में उड़कर चित्रांग का पता लगाओ।

लघुपतन तुरन्त ही उसकी खोज में चल दिया। झील से थोड़ी ही दूर पर उसने चित्रांग को जाल में फँसे देखा। यह देखकर उसे बहुत दुख हुआ और उसने पूछा—मित्र ! तुम इस विपत्ति में कैसे फँस गये ?



लघुपतन को देखकर चित्रांग की आँखों में आँसू आ गये। उसने कहा—मेरा अन्त तो निकट आ गया है। तुमसे मिलकर इस समय मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। मेरे द्वारा यदि कभी कोई तुम्हारा अनिष्ट हुआ हो या दुख तुम्हें पहुँचा हो तो कृपया उसे क्षमा कर देना। मित्र मंथरक तथा हिरण्यक तक यही संदेशा पहुँचा देना।

लघुपतन ने उसे ढाढ़स बँधाते हुए कहा—मित्र ! हिम्मत क्यों हारते हो ? जब तक हम लोग जीवित हैं तुम्हारा लेशमात्र भी अनिष्ट नहीं हो सकता। मैं अभी जाकर हिरण्यक को लाता हूँ। वह तुरन्त ही तुम्हारे बंधन काट देगा।

उसे इस प्रकार धीरज बँधाकर वह हिरण्यक को लेने चला गया और थोड़ी देर बाद ही उसे अपनी पीठ पर बैठाकर ले आया। उसको आते देखकर चित्रांग की जान में जान आ गई। उसने हिरण्यक से कहा—मित्र ! यदि मनुष्य को विपत्ति से बचने की इच्छा हो तो उसे तुम्हारे जैसे सच्चे और बुद्धिमान् मित्र ढूँढ़ने चाहिए। हिरण्यक ने कहा—मित्र ! तुम्हारे जैसा विद्वान् और ज्ञानी कैसे इस जाल में फँस गया ?

चित्रांग ने कहा—आज मैं जीवन में दूसरी बार फिर जाल में फँसा हूँ। घटना लम्बी है फिर किसी समय सुनाऊँगा। तुम जल्दी से मेरे बन्धन काट दो।

हिरण्यक ने कहा—जब तक मैं तुम्हारे निकट हूँ तुम तनिक भी भय न करो। इसीलिए मैं कारण जानना चाहता था क्योंकि मेरे विचार में मेरी ही तरह तुम भी शास्त्र और नीति में पारंगत हो।

चित्रांग ने कहा—पहली बार जब मैं छः मास का था तो एक दिन मैं अपने माँ-बाप और अन्य सम्बन्धियों के साथ कलोल करता वन में घूम रहा था। अपने खेल की धुन में मैं उनसे कुछ दूर निकल गया। लौटते समय जब मैं भागा चला आ रहा था तो अबोध होने के कारण रास्ते में बिछे जाल को न परख सका। इसलिए उसमें फँस गया। शिकारी ने मुझे बच्चा जानकर मारा नहीं बल्कि वहाँ के राजकुमार को भेंट कर दिया। राजकुमार ने मुझे बड़े प्रेम से अपने महल में रक्खा। एक दिन आकाश में काले बादल छाये हुए थे। राजकुमार मेरे निकट शय्या पर लेटा था। सहसा बिजली कड़की और मुझे अपने घर और माँ-बाप की याद आ गई। मेरे मुँह से एक दीर्घ श्वास निकली और मैंने कहा—हे भगवान्! मुझे कब जननी-जन्मभूमि के दर्शन होंगे।

मेरी आर्त पुकार सुनकर राजकुमार चौंक पड़ा और इधर-उधर देखने लगा कि यह कौन बोला। उसने पुकारकर कहा—कौन? फिर मेरी ओर देखकर कहा—यह विचित्र बात है, यहाँ कोई भी नहीं है—इसलिए सिवा इस हिरन के और कोई नहीं हो सकता।

ऐसा सोच वह भयभीत हो वहाँ से भाग गया और बहुत से तांत्रिकों को बुलवाकर उन्हें सारा वृत्तान्त बताया। उन लोगों ने मुझे प्रेत समझकर मारना आरम्भ कर दिया। जिस समय यह लोग मेरे ऊपर अत्याचार कर रहे थे वहाँ एक साधु आ गया। उसने मेरी रक्षा की और राजकुमार से कहा—कुमार! इस वर्षाकाल में इस मृग-शावक को अपनी माँ और जन्मभूमि की याद आ गई। इसलिए इसके हृदय से ऐसी बात निकली थी। इस छोटी सी बात के लिये इस पर अत्याचार करने की आवश्यकता नहीं। यह सुनकर राजकुमार का भय जाता रहा और उसने प्रसन्न होकर मुझे जंगल में छुड़वा दिया।

जिस समय चित्रांग अपनी कथा सुना रहा था वहाँ मंथरक भी आ पहुँचा। उसे देखकर हिरण्यक ने कहा--मित्र! तुमने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया। यदि एकाएक शिकारी आ जाय तो हम लोग तो बच जायँगे पर तुम्हारा क्या होगा? मंथरक ने कहा—भाई, मुझे दोष न दो। मित्र को कष्ट में जानकर मैं वहाँ किसी प्रकार भी रुक नहीं सकता था। क्योंकि मित्र-हानि से प्राण-हानि उत्तम है।

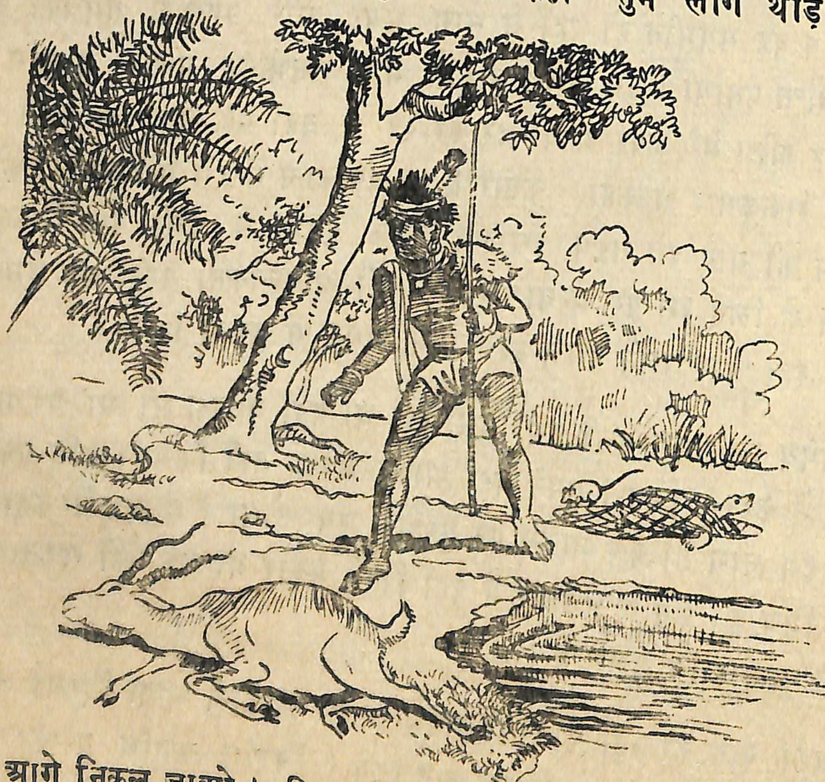
जब मंथरक बात कर रहा था उसी समय दूर पर शिकारी आता दिखाई पड़ा। उसको आते देख हिरण्यक ने चित्रांग के बन्धन काट दिये। चित्रांग छलाँग मारकर निकल गया। हिरण्यक पेड़ों के झुरमुट में घुस गया और लघुपतन उड़ गया। किन्तु बिचारा मंथरक धीमी चाल के कारण भाग न सका। शिकारी ने आकर जब अपना जाल कटा पड़ा देखा

तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसकी दृष्टि थोड़ी दूर पर धीमी चाल से जाते हुए कछुए पर पड़ी। उसने सोचा, हो न हो यह जाल इसी दुष्ट ने काटा है। अच्छा, तो आज इसी का मांस खाऊँगा।

यह सोचकर उसने मंथरक को पकड़ लिया और उसके पैर बाँध, उसे अपनी पीठ पर लाद, अपने घर की ओर चल दिया। हिरण्यक आदि ने जब यह देखा तब तो वे बड़े दुखी हुए। हिरण्यक कहने लगा—जब विपत्तियों का आना आरम्भ होता है तब वे चारों ओर से घेरती चली आती हैं। यदि एक से मुक्ति मिली तो दूसरी सिर पर सवार है।

फिर उसने औरों से कहा कि जब तक ये लोग हमें दिखाई पड़ते हैं तब तक हमें इनका पीछा करना चाहिए। संभवतः मार्ग में कोई ऐसी युक्ति सूझ जाय जिससे मंथरक को हम लोग छुड़ा सकें।

ऐसी सलाह कर वे तीनों शिकारी के पीछे हो लिए। चलते-चलते एकाएक हिरण्यक को एक युक्ति सूझी। उसने चित्रांग और लघुपतन से कहा—तुम लोग थोड़ा चक्कर देकर



इन लोगों से आगे निकल जाओ। फिर चित्रांग से कहा—तुम झील के किनारे चारों खाने चित लेट जाना, जिससे दूर से देखकर तुम मरे से प्रतीत हो और तुम लघुपतन इनके

शरीर पर बैठकर इनकी आँख निकालने की चेष्टा सी करना। शिकारी थोड़ी देर में जब इधर से निकलेगा तो चित्रांग को मरा समझकर अवश्य ही इन्हें पकड़ने को अपना सारा बोझ फेंककर दौड़ेगा। जब वह तुम लोगों के निकट पहुँचे तुम लोग भाग जाना और इस बीच में मैं मंथरक के बन्धन काट दूँगा।

उन लोगों ने ऐसा ही किया। शिकारी ने जब झील के किनारे मरा हिरन पड़ा देखा तो बहुत प्रसन्न हुआ और कछुए को भूमि पर पटककर उस ओर बढ़ा। हिरण्यक ने तुरन्त ही आकर मंथरक के बन्धन काट दिये और वह झील में घुस गया तथा हिरण्यक भी पेड़ों के झुरमुट में घुस गया। उधर शिकारी को निकट आते देख लघुपतन उड़ गया और चित्रांग उठकर छलाँगें मारता हुआ वन में घुस गया। शिकारी बहुत ही निराश होकर कछुए की तरफ लौटा। कछुवा तब तक झील में पहुँच चुका था। उसे भी वहाँ न देखकर शिकारी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। साथ ही उसके मन में भय भी उत्पन्न हुआ। इसे कोई दैवी घटना समझकर वह वहाँ से डर के मारे भाग खड़ा हुआ।

जब शिकारी दृष्टि से ओझल हो गया तो चारों मित्र आपस में मिलकर एक दूसरे को धन्यवाद देने लगे और बहुत ही प्रेम से मिले-भेंटे।

असाधना अपि प्राज्ञा बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः।
साधयन्त्याशु कार्याणि काकाखुमृगकूर्मवत् ॥

अर्थात्—साधन-रहित होते हुए भी विद्वान् तथा बुद्धिमान् मित्र अपने कार्य को शीघ्र ही सिद्ध कर लेते हैं, जैसे कौआ, चूहा, मृग तथा कछुवे ने किया।



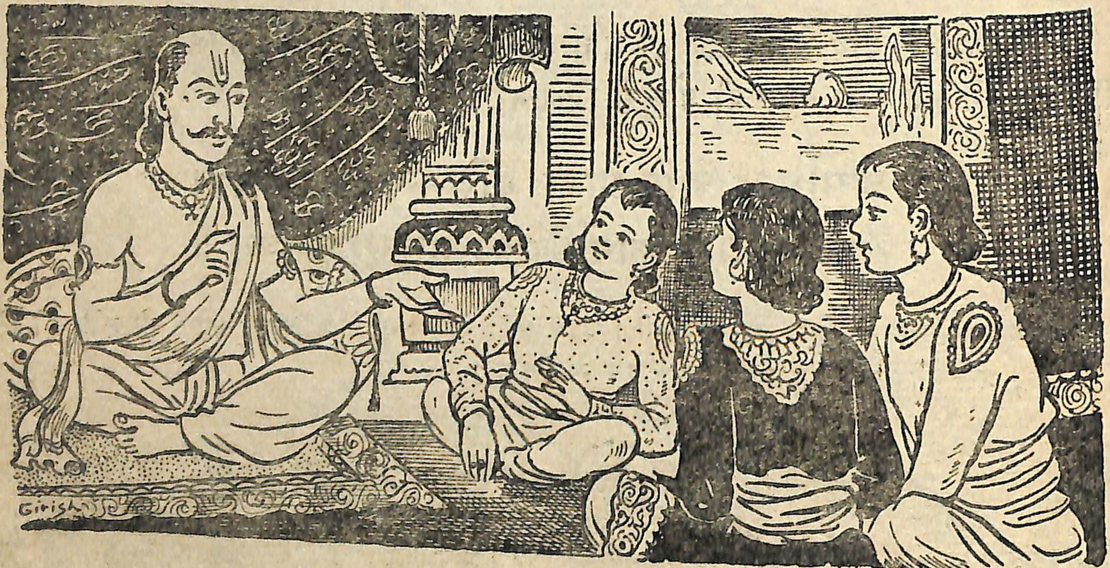
———

उन्नीसवीं कथा

भाग्य से युद्ध करनेवाला जुलाहा

अर्थस्योपार्जनं कृत्वा नैव भोगं समश्नुते ।
अरण्यं महदासाद्य मूढः सोमिलको यथा ॥

अर्थात्—धनोपार्जन करने पर भी भाग्यहीन उसे भोग नहीं सकता, उसे मूर्ख सोमिलक के समान भूखा ही रहना पड़ता है मानो वह जंगल में हो।



सोमिलक एक अत्यंत चतुर और अपने कार्य में निपुण जुलाहा था। उसके बुने हुए कपड़े इतने सुन्दर और बढ़िया होते थे कि वे राजाओं के पहनने के योग्य होते थे। यद्यपि वह नाना प्रकार के सुन्दर और बढ़िया कपड़ों के बुनने में असाधारण रूप से निपुण था, फिर भी वह अपनी जीविका से अधिक धन न पैदा कर पाता था। वह केवल उतना ही धन पैदा कर पाता जितने में उसका और उसकी पत्नी का पेट भर जाय और तन ढँक जाय। अपने अन्य साथियों को नित्य ही वह पर्याप्त धन उपार्जित करते देखता था।

एक दिन उसने अपनी पत्नी से कहा—भद्रे ! देखो अन्य जुलाहे, जो मेरे जैसा बढ़िया काम नहीं कर सकते, कितना पैसा पैदा करते हैं और मुझे उनकी तुलना में कुछ भी आमदनी नहीं होती। इसलिए मैंने इस अभागे नगर को त्यागने का विचार किया है। अब मैं किसी ऐसे नगर में जाऊँगा जहाँ अधिक धन पैदा कर सकूँ। उसकी पत्नी ने कहा—नाथ ! आपका यह विचार ठीक नहीं है। धन तो सदा उतना ही मिलता है जितना भाग्य में लिखा होता है। चाहे जितना भटको भाग्य में लिखे से अधिक कहीं न मिलेगा। भाग्य बलवान् है, उससे अधिक कुछ भी नहीं मिलता। इसलिए मेरे विचार में आप यहीं रहें।

जुलाहे ने कहा—प्रिये ! तुम्हारा यह विचार गलत है, बिना परिश्रम किये कोई फल प्राप्त नहीं होता। संसार के सभी कार्य प्रयत्न के आधीन होते हैं। भाग्य प्रयत्न का ही दूसरा नाम है। इसलिए मुझे अवश्य प्रयत्न करना चाहिए और यहाँ से किसी दूसरे नगर को जाना चाहिए।

ऐसा निश्चय कर सोमिलक अपने नगर से चलकर दूसरे नगर वर्धमानपुर में जा पहुँचा। वहाँ तीन वर्ष कठोर परिश्रम कर सोमिलक ने तीन सौ सुवर्ण की मोहरें पैदा कीं। उन्हें लेकर वह अपने नगर को चल दिया। मार्ग में एक भयंकर वन पड़ा जिसे पार करने में रात हो गई। रात्रि में चोर-डाकुओं द्वारा लूटे जाने के भय से वह निकट के एक वृक्ष पर रात बिताने का निश्चय कर चढ़ गया।

रात्रि में स्वप्न में उसे दो महाभयंकर शक्लवाले मनुष्य दिखाई पड़े। जिनकी लाल-लाल आँखें अंगारों जैसी चमक रही थीं। वे दोनों आपस में झगड़ रहे थे। उनमें से एक ने दूसरे से कहा—कर्ता ! मेरे बार-बार मना करने पर भी तुमने सोमिलक को आवश्यकता से अधिक धन दे दिया है। तुमने इससे पहले उसको कभी आवश्यकता से एक छदाम भी अधिक नहीं दिया था। इस बार ऐसा क्यों किया ?

दूसरे ने उत्तर दिया—कर्म ! मेरा काम तो हर मनुष्य को उसके कार्य के अनुसार फल देने का है। अब यह तुम्हारा कार्य है कि उसके भाग्य से जो अधिक धन उसके पास है, उसे ले लो।

यह सुनकर सोमिलक की आँखें खुल गईं। उसने तुरन्त टटोलकर मुहरों की थैली को देखा किन्तु उसे खाली पाया। अब उसके दुख का ठिकाना न रहा। वह बार-बार सोचने लगा—मेरी इतनी मेहनत की कमाई इतनी जल्दी गायब कैसे हो गई ? हाय ! अब मैं क्या

मुख लेकर अपने मित्रों और पत्नी के पास जाऊँगा ? वह पुनः वर्धमानपुर वापस लौट गया और इस बार उसने एक ही वर्ष के कड़े परिश्रम से पाँच सौ सुवर्ण की मोहरें पैदा कर लीं जिन्हें लेकर वह अपने घर को फिर चल दिया। मार्ग में ठीक उसी वृक्ष के पास पहुँचते ही फिर उसे रात हो गई। यह देखकर उसका हृदय एक बार ठिठक-सा गया और नाना प्रकार की आशंकाओं को मन में लिए फिर वह उसी पेड़ पर रात बिताने के लिए चढ़ा और जाकर सो गया।

स्वप्न में उसे इस बार फिर वही दोनों भयंकर मूर्तियाँ आपस में एक दूसरे से लड़ती दिखाई पड़ीं। एक ने दूसरे से कहा—कर्ता ! तुमने सोमिलक को पाँच सौ मुहरें क्यों दीं ? क्या अभी तक तुम्हारी समझ में यह नहीं आया कि उसके भाग्य में उसके पेट भरने और तन ढकने भर से अधिक धन नहीं है। कर्ता ने कहा—कर्म ! मैं मनुष्य को उसके परिश्रम के अनुसार फल देने के लिये बाध्य हूँ। उस धन को उसके पास रहने या न रहने देने का कार्य तुम्हारा है। मुझसे तुम व्यर्थ क्रुद्ध होते हो। उसके भाग्य से जितना भी अधिक धन उसके पास है, ले क्यों नहीं लेते ?

यह सुनते ही सोमिलक की निद्रा भंग हो गई और टटोलने पर उसने फिर मुहरों को गायब पाया। अब उसका दुख चरम सीमा पर पहुँच गया और उसने धनहीन होकर घर जाने के बदले वहीं आत्महत्या कर प्राण दे देने का निश्चय किया। वहीं पर थोड़ी सी मूँज इकट्ठी कर उसने रस्सी बटी और उसमें फन्दा लगाकर वह अपनी जान देने के लिए तैयार हो गया।

उसी समय आकाश में वही कर्ता नामक मनुष्य उसे दिखाई पड़ा। उसने कहा—सोमिलक ! ऐसा कार्य मत करो। मैं ही वह कर्ता हूँ जिसने तुम्हारे धन के अपहरण के लिये कर्म से कहा था। अब तक मैं तुमको तुम्हारी आवश्यकता से अधिक धन नहीं पाने देता था। पर मेरे दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाते। मैं तुम्हारे कठिन परिश्रम को देखकर, जो तुमने कर्मफल को पलट देने के लिये किये हैं, बहुत प्रसन्न हूँ। इसलिए तुम मुझसे कोई वरदान माँगो।

सोमिलक ने कहा—यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मुझे धनवान् होने का वरदान दीजिए। कर्ता ने कहा—सोमिलक ! ऐसे धन को लेकर तुम क्या करोगे जिसका तुम रोटी-कपड़े को छोड़कर कोई अन्य उपभोग नहीं कर सकते क्योंकि इससे अधिक तो तुम्हारे भाग्य में ही नहीं लिखा है। सोमिलक ने कहा—जो भी हो, आप मुझे धन दीजिए। इस संसार

में धनवान् ही की प्रतिष्ठा है। निर्धन पुरुष सुन्दर, विद्वान् तथा बलवान् होने पर भी अप-मानित होता है। धनवान् कुरूप, मूर्ख तथा निर्बल होने पर भी प्रतिष्ठित होता है।

कर्ता ने कहा—यदि ऐसा ही चाहते हो तो एक बार फिर वर्धमानपुर जाओ। वहाँ धनगुप्त और भक्तधन नाम के दो व्यापारी रहते हैं। उन्हें जाकर देखो और समझो। फिर उनमें से तुम जिसकी हालत पसन्द करोगे मैं वही तुमको विशेष रूप से दूँगा। इतना कहकर कर्ता अन्तर्धान हो गया।

सोमिलक फिर वर्धमानपुर लौट आया। संध्या हो जाने पर बड़ी कठिनाई से ढूँढ़ता-ढूँढ़ता वह धनगुप्त के यहाँ पहुँचा। यद्यपि धनगुप्त बहुत ही धनवान् था पर वह एक भी पैसा दान-धर्म के नाम पर व्यय नहीं करता था। न कभी उसके यहाँ से किसी भिखारी को कुछ मिलता था। इसलिये नगर के लोग अधिकतर उसके नाम से भी परिचित नहीं थे। सोमिलक जाकर उसके मकान के बाहर बैठ गया।

धनगुप्त घर पर नहीं था। भोजन का समय हो गया था। पहले तो धनगुप्त की स्त्री और बच्चों ने उसे वहाँ से भगा देना चाहा। पर सोमिलक वहाँ से किसी प्रकार भी न टला। उसने कहा—मैं तुम्हारे द्वार पर सूर्यास्त के पश्चात् आया हुआ अतिथि हूँ। तुम लोग भगवान् की कृपा से बहुत ही धनवान् हो। इसलिए तुम लोगों को परम्परा से चली आई रीति के अनुसार मुझे भोजन देना ही पड़ेगा। बहुत वाद-विवाद के बाद उसे वहाँ ठहरने को जगह दी गई और भोजन दिया गया। उन लोगों के अनेक उलाहने सुनकर भी वह वहीं सो गया।

रात में उसे स्वप्न में वही दोनों आदमी कर्ता और कर्म फिर दिखाई पड़े। कर्म ने कहा—कर्ता! तुमने धनगुप्त के यहाँ यह अतिथि भेजकर व्यर्थ ही एक समय के भोजन का व्यय क्यों बढ़ाया? यह अनुचित बात है। कर्ता ने कहा—कर्म! यह मेरा अपराध नहीं। मेरा तो काम ही लोगों की आय और व्यय कराना है। यह तुम्हारा ही कार्य है कि इस व्यर्थ के व्यय को पूरा करो। अच्छा! कर्म ने कहा—धनगुप्त को प्रातःकाल ही हैजा हो जायगा और वह कंजूस वैद्य को खर्चा होने के डर से बुलाएगा नहीं। इस प्रकार उसका अपना दोनों समय का भोजन इस एक समय भोजन देने के बदले में बच जायगा।

यह स्वप्न देखकर सोमिलक की आँख खुल गई। तभी उसने देखा कि धनगुप्त लौटकर आ गया है। उसने जब आकर सुना कि उसके यहाँ एक अतिथि ठहरा है और उसे भोजन

कराया गया है, तब तो वह अपनी पत्नी आदि पर बहुत ही बिगड़ा। उसे रात भर इस व्यर्थ के व्यय की चिंता से नींद भी नहीं आई। सवेरा होते ही कर्म के कथनानुसार ही धनगुप्त को हैजा हो गया।

यह देखकर सोमिलक खिन्नचित्त से भक्तधन के घर की खोज में चल दिया। उसे भक्तधन के मकान का पता बिना किसी कष्ट के मिल गया क्योंकि उसे हर धनी और निर्धन जानता था। वह अपनी दानवीरता तथा अतिथिसेवा के लिए प्रसिद्ध था। जैसे ही भक्तधन ने सोमिलक को देखा उसने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया। भक्तधन ने सोमिलक को सादर स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र पहनने के लिए भेंट किया और बहुत ही प्रेम से सुस्वाद भोजन कराकर उसे एक सुन्दर कमरे में गद्देदार शय्या रात्रि के विश्राम करने के लिए दी।

रात को उसे स्वप्न में फिर वही दोनों मनुष्य दिखाई पड़े। कर्म कह रहा था—कर्ता, तुमने बेचारे भक्तधन के यहाँ अतिथि भेजकर उसका तमाम धन खर्च करा दिया। अब भला वह अपना ऋण कैसे चुकाएगा? कर्ता ने कहा—मित्र कर्म! तुम तनिक भी चिन्ता न करो। कल प्रातः ही राजा का एक कर्मचारी भक्तधन के लिए राजा की ओर से भेंट में, उसके किसी उपकार के बदले, बहुत-सा धन लेकर आएगा। उसी धन से भक्तधन की आवश्यकताएँ पूरी हो जाएँगी।

सोमिलक ने दूसरे दिन प्रातः ही राजा के दूत को बहुत सा धन और रत्न राजा की ओर से भक्तधन को देते हुए देखा। यह देखकर उसने अपने मन में सोचा—धन्य है ईश्वर की लीला! धनहीन होते हुए भी भक्तधन उस करोड़पति धनगुप्त से कहीं श्रेष्ठ है। वही धन श्रेष्ठ है जो दीन-दुखियों का दुख दूर करने में व्यय हो।

ऐसा विचारकर उसने कर्ता से प्रार्थना की कि हे देव! मुझे भक्तधन जैसा होने का ही वरदान दो। मुझे धनगुप्त जैसे धनवान् होने की लेशमात्र भी इच्छा नहीं है। कर्ता ने उसे यही वरदान दिया।

इसके बाद सोमिलक अपने घर को लौट गया जहाँ वह अपनी पत्नी के साथ सुख और सन्तोषपूर्वक रहने लगा। वह सदा हर एक की प्रसन्न-मन से सेवा करता था। ईश्वर की कृपा से उसे दूसरों की सेवा करने से कभी कष्ट न उठाना पड़ा और न कभी उसके पास जोड़ने के लिए अधिक धन ही हुआ।

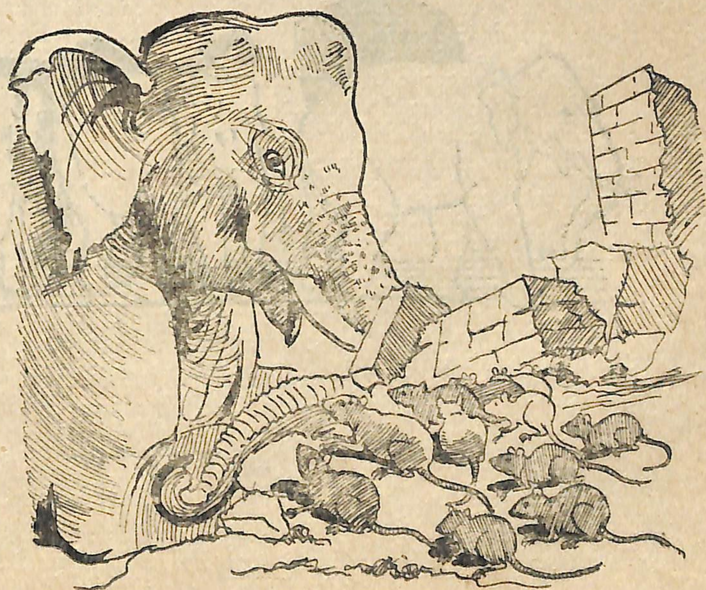
बीसवीं कथा

चूहा और हाथी

किसी प्राचीन नगर के खण्डहरों में बहुत से चूहों ने अपना निवास-स्थान बना रक्खा था। उस खण्डहर के बड़े कमरों और तहखानों में अगणित चूहे आनन्द से रहते थे। वहाँ वे नाना प्रकार के आमोद-प्रमोद में निश्चिन्त होकर अपना जीवन बिताते थे।

उसी देश के दूसरे भाग में जब अकाल पड़ा तो एक जंगली हाथियों का राजा अपने अनुचरों और परिवार के साथ, जल की खोज में इस खण्डहर की ओर आ पहुँचा। हाथियों के इस झुण्ड के पैर के नीचे पड़कर अगणित चूहे परलोक सिधारे। इस नई आपत्ति से घबड़ाकर बचे-खुचे चूहों ने एक सभा की और उसमें सर्व-सम्मति से यह निश्चय किया कि गजराज से प्रार्थना की जाय कि वे इस अत्याचार को रोकें जिससे चूहों के वंशों का पूर्ण विनाश न होने पाए।

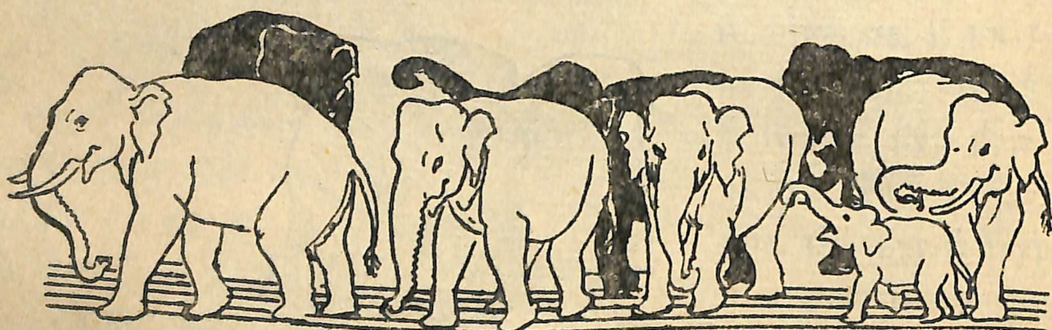
आपस में ऐसा निश्चित कर वे सब गजराज की सेवा में पहुँचे और उससे प्रार्थना की—राजन्! इस स्थान से थोड़ी दूर पर खण्डहरों में हम लोग अपने-अपने परिवारों के साथ रहते हैं। यहाँ पर हम लोग पुश्तों से रहते चले आये हैं, किन्तु जब से आप लोग इधर पधारे हैं आप लोग नित्य ही जल पीने के लिए उन्हीं खण्डहरों में होते हुए जाते हैं। हमारे परिवार के बहुत से चूहे आप लोगों के पैरों के नीचे पड़कर सुरपुर की यात्रा कर चुके हैं। यदि आप लोग उधर से निकलते रहे तो हम लोगों के समस्त परिवारों का जड़मूल से नाश हो जायगा। इसलिए यदि आपको हम तुच्छ जीवों के जीवन पर तनिक भी दया आ



जाय तो आप कृपया अपना जलमार्ग बदल दीजिए। आपकी इस कृपा के उपलक्ष में अवसर आने पर आपकी जो भी सेवा हम छोटे जीवों से हो सकेगी, करेंगे।

गजराज ने उनकी बातों को ध्यानपूर्वक सुना और उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

इस घटना के कुछ समय पश्चात् एक बार किसी राजा के शिकारियों ने उसी गजराज को उसके तमाम झुण्ड के साथियों सहित पकड़ लिया और रस्सों में बाँधकर पेड़ों में जकड़ दिया। उन आदमियों के जाने के बाद गजराज को अपनी और अपने साथियों की मुक्ति की चिन्ता हुई। उसी समय उसे उन चूहों की याद आ गई। उसने तुरन्त एक हाथी को, जो पकड़े जाने से बच रहा था, भेजकर उन चूहों के पास अपनी विपत्ति-कथा कहलाई और उन्हें अपनी सहायता के लिये बुलवाया। गजराज की विपत्ति का हाल सुनकर सारे चूहे तुरन्त उसकी सहायता को पहुँच गये और गजराज तथा उसके झुण्ड के सभी हाथियों के बंधनों को काटकर उन्हें मुक्त कर दिया। गजराज और उसके सभी साथियों ने चूहों के इस उपकार का उन्हें बहुत धन्यवाद दिया।



———

नवयुग बाल-साहित्यमाला

उपहार देने के लिए, सहायक पुस्तकों के रूप में पढ़ाने के लिए

तथा

सामाजिक शिक्षा के अंतर्गत पठन-पाठन के लिए

सचित्र, सर्वोत्तम २० पुस्तकों का पुस्तकालय

लेखक—श्री लक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज, एम० ए०

(१) नल-दमयन्ती ।=)
(२) सावित्री-सत्यवान ।)
(३) देश-देश की कहानियाँ भाग १ ।।)
(४) देश-देश की कहानियाँ भाग २ ।।)
(५) बाल-हितोपदेश ।=)
(६) बाल-शकुंतला ।)
(७) बाल-जयद्रथवध ।)
(८) बाल-सुदामाचरित ।=)
(९) बाल-हरिश्चन्द्र ।।)
(१०) बाल-महाभारत ।।)
(११) महारानी पद्मिनी ।।)
(१२) बाल-गंगावतरण ।।)
(१३) बाल-शेक्सपियर ।।)
(१४) बाल-कादंबरी ।।)
(१५) हमारे जवाहरलाल नेहरू २।।)
(१६) सुबोध पंचतंत्र—प्रथम भाग १।।)
(१७) सुबोध शाकुंतल ।।।)
(१८) सुबोध पंचतंत्र—द्वितीय भाग १।।)

(१९) बाल-रामायण

प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजी का अमर काव्य इस पुस्तक में सरल करके सम्पादित किया गया है। इसकी विशेषता इस बात में है कि गद्य में रामायण की कथा के अंतर्गत मूल दोहे-चौपाइयों के २५ चुनाव इस प्रकार रक्खे गये हैं कि कथा का तारतम्य भी बना रहता है और रामायण की मूल भाषा से भी बालकों का सहज ही में परिचय हो जाता है। बड़ा साइज मूल्य ३) तीन रुपया।

(२०) बाल-रवीन्द्र

कवि-सम्राट् स्वर्गीय श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की चार सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ सरल भाषा में पुनर्कथित हैं। प्रत्येक कहानी में चित्र हैं और साथ में कवीन्द्र रवीन्द्र का संक्षिप्त परिचय भी। मूल्य १।।) डेढ़ रुपया।

पूरे सेट का मूल्य केवल १६ रु० ८ आ०